Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

लोककथा : सैद्धांतिक विवेचन

चतुर्थ अध्याय

लोककथा एक सैद्धांतिक विवेचन

हिन्दी साहित्य के इतिहास में लोककथा साहित्य को परिभावित करना मानो जैसे समुद्र को लांघने के समान है क्योंकि लोककथा किसी एक विषय को लेकर चलनेवाली विद्या नहीं है। कई राज्य, कई गाँव, आदि जैसे छोटी – छोटी जगहों पर लोककथा का उद्भव होना या कथाओं को पुनःजिवित करना वह उस क्षेत्र की कथा साहित्य का विधा स्वरुप है।

मनुष्य कथाओं में स्वयं का श्रृंगार, खानपान, रीति रिवाज, और परम्पराओं को नये रुप से जागरुकता प्रदान करने के लिए स्वंय के साथ स्वम् गर्भित हो जाता है।

आदिकाल से ही लोककथा अपने विभिन्न – विभिन्न स्वरुपों के साथ अपने – अपने क्षेत्र में आलौकिक रुप से विराजमान है।

लोककथा की प्रायः दो शैली देखी गयी है (१) वह जो मौखिक रुप से कही जाती है, दूसरी वह जो संस्कार देते हुए लोककथाओं को वर्णित करते – करते जीवित किया जाता है। जैसे कि [१](आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का अभिमत इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है –

लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोक प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता रहा है जो मौखिक अथवा लिखित परम्परा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्राप्त होते रहे हैं।)[१]

'स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ फोक टेल' में लोककथा के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि लोककथा की कोई सुनिश्चित परिभाषा न होकर इस शब्द के अन्तगर्त समस्त परम्परागत आख्यान और उनके विभेदों को सम्मिलित किया गया है।

लोककथाओं का स्वरुप :

लोककथा बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। जब कुछ ग्रामीणजन समय बिताने एक साथ बैठते थे तब वह कुछ कथाएँ सुनते सुनाते थे। यह केवल भारत में ही नहीं सभी देशों के लोग कहते थे। जब इस कथाओं को एक साथ ध्यान देना शुरु किया तब से यह प्रकाश में आयी अर्थात् इसका संग्रह करना तथा प्रचार करना शुरु किया।

कथाओं के साथ परम्परा भी जुड़ी होती है। जैसे राम की कथा कहते हैं तो सभी बडे भक्तिभाव, श्रद्धा से सुनते हैं। वह समय आने पर दुष्टों को दण्ड देते थे तथा स्वजनों के प्रति प्रेमभाव, आदरभाव रखते थे। इस तरह से वह मानव की हर भावनाओं से परिपूर्ण थे। इसलिए लोगों को वह कथा सुनने में आनंद आता है। लोग खुद भी वैसा ही बनने की कोशिश करते है। छोटे बच्चो को डाँटकर हम कुछ नहीं सिखा सकते। बच्चों को यदि दादी – नानी के पास भेज देते हैं तो वह कहानी / कथा सुनकर सब अच्छी बातें सीख जाते हैं। इसी प्रकार से एक श्लोक कहा हैं –

यथा नव मृदघटे लग्नः संस्कारो नान्यथा भवते्।

कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।।

[२](लोक शब्द संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना है जो 'कहने' के अर्थ में प्रयुक्त होती है। कथा शब्द के लिए ही प्रयुक्त होनेवाला 'कहानी' शब्द कथा का ही अपभ्रंश है।)[२] लोककथा भारत के हर गाँव, क्षेत्र, राज्य में वास करती है। हर जगह की लोक

कथाएँ भिन्न – भिन्न होती है। हर जनमानस के जनजीवन में लोक कथाएँ जुड़ी होती हैं।

हम अपने घर – परिवार में दादा – दादी, नाना – नानी से जो भी कथाएँ सुनते हैं, वही लोक कथा है। यह बहुत प्राचीन समय से हर एक के जीवन में रच – बस गयी है। आज भी हमारे बुर्जुग हमें कितनी ही ऐसी लोककथाएँ सुना देंगे। यह हमारे गाँवो में हर जगह पर मिलनेवाली हैं। हर एक गाँव की अलग – अलग कथाएँ होती है। छोटी से छोटी जगह की भी एक कथा होती है।

लोक संस्कृति :

वैदिक काल से ही इस देश में दो अलग अलग धाराएँ फलती – फूलती रही हैं (१) शिष्ट संस्कृति (२) लोक संस्कृति।

शिष्ट संस्कृति : जिससे व्यक्ति उच्च शिखर तक कामायाबी पा सकता है जिसका मूल वेद तथा शास्त्र था।

लोक संस्कृति : लोक संस्कृति व्यक्ति को शिष्टाचार में सहायता करती है तथा धार्मिक, विश्वास, अनुष्ठान, क्रिया कलाप आदि के पूर्णतः परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों का आपस में सहयोग आवश्यक होता है।

अर्थवेद लोक संस्कृति का परिचायक है तथा ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का परिचायक है।

[3](कुछ विद्धानों की मानवशास्त्रीय दृष्टि से लोक संस्कृति की परिभाषाएँ।

(१) सी. सी. नॉर्थ :

''मानव की नीजि आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए सहायक सिद्ध होने से उसके द्वारा निर्मित मानव लोक संस्कृति होती है।''

(२) टायलर :

''लोक संस्कृति वह सम्पूर्ण जटिलता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आधार, कानून, प्रथा तथा इसी प्रकार की अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है, जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।

(३) एडवर्ड सापिर :

''लोकसंस्कृति मानव जीवन में प्राकृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक प्रदत्त तत्व है।'')[३]

लोक संस्कृति के रुप (तत्व) :

(१) विचार :

सभी लोगों के समाज में विचार भिन्न – भिन्न होते हैं। [४]('बीरस्टीड ने विचारों के आठ रुप बताये हैं (१) वैज्ञानिक सत्य (२) धार्मिक विश्वास (३) पुराण कथा (४) उपाख्यान (५) साहित्य (६) अन्ध विश्वास (७) सूत्र (८) लोककथाएँ।')[४]

(२) व्यवहार आदर्श :

सभी के सामाजिक जीवन की आदतों को काबू में रखने के लिए कुछ नियम बनाये गये हैं। जो समाज के व्यवहार का आदर्श है।

[५](इन आदर्श नियमों में कानून, नियम, प्रथाएँ, लोककथाएँ, लोकरीतियाँ, रुढ़ियाँ, निषेध, फैशन, धार्मिक रीतियाँ, संस्कार, अनुष्ठान, लोक रीति, सदाचार आदि आते हैं।)[५]

लोक संस्कृति – लोकसंस्कृति शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है कि लोक (लोगों की संस्कृति) ऐसी संस्कृति जो हर एक मनुष्य जानता हो तथा मानता हो उसमें आस्था विश्वास, रीति रिवाज, रहन सहन, व्यवहार, धार्मिक विश्वास सभी का समावेश होता है। एक व्यक्ति को समाज में जीने के लिए अर्थात् अच्छा जीवन व्यतित करने के लिए समाज के नियम के दायरे में रहकर कार्य करना पडता है और यह नियम भी मनुष्यों के ही बनाये हुए हैं। क्योंकि इन्हीं नियमों को बनाने से व्यक्ति का जीवन सुख शांति से व्यतीत होता है। तो लोगों द्वारा लोगों के लिए बनाये नियमों का पालन करना ही लोक संस्कृति के अन्तर्गत आता है।

समय – समय पर अपनी सुविधानुसार नियमों में बदलाव देखने को मिलता है और एक सामाजिक व्यक्ति को वह प्राप्त होती है। वही लोक संस्कृति है।

अध्येताओं की दृष्टि से लोक कथाओं का जन्म एवं विस्तार :

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुछ पूरोवीर विद्धान भारतीय धर्मगाथाओं का अनुशीलन कर रहे थे तथा कुछ लोककथाओं को इसी देश का मान रहे थे।

[६](एकमूलीय सिद्धांत को लोककथाओं के संदर्भ में प्राथमिकता देनेवाला यह संप्रदाय (इन्डीयन स्कूल) के नाम से प्रसिद्ध है। जिसका प्रवर्तक जर्मन विद्धान थियोडोर बेनफी (१८०९ – १८८१) था।

ग्रिमबंधुओं का अनुमान था कि समान घटनाओं वाली लोक कथाएँ मूलतः भारोपीय हैं। ये दोनों भाई चूँकी विख्यात भाषाविद भी थे। इसलिए लोकवार्ता मूलक अपने तथ्यों की पृष्टि भाषा के आधार पर भी करते थे।)[६]

इसके बाद भारतीय लोक कथाएँ एशिया, अफ्रीका, युरोप, उत्तरी, पूर्वी क्षेत्र तथा पूरे विश्व में फैल गई। इसमें मुख्य खोजकर्ता बेनफी तथा उसके बाद रेनोल्ड कोल्हर था। तथा फ्रांस के संग्रहकर्ता इमानुएल कांस्क्विन (१८४१ – १९२१) तीस वर्षों तक भारतीय सिद्धांत का पक्ष लेते रहे।

[७](आधुनिक लोक वार्ताविद भारत को ही लोक कथाओं का एक मात्र प्राचीन स्त्रोत स्वीकार नहीं करते। फिर भी वे उसे एक महत्वपूर्ण केन्द्र अवश्य मानते है।)[७]

लोककथाओं का अर्थ :

लोककथा का अर्थ होता है कि वह कथाएँ जो प्राचीन समय से आज तक चली आ रही हो लोकजीवन में प्रचलीत हो। वही लोककथा हैं।

जिस प्रकार से नये मिट्टी के घड़े को दिया संस्कार कभी नहीं मिट पाता। उसी तरह से कथा के बहाने बालकों को नीति के उपदेश दे सकते हैं।

इसी तरह अलग – अलग प्रदेश की अलग – अलग कथाएँ भारत में प्रचलित है। जिसमें से कुछ सब जगह समान है। जैसे भाई दूज, करवा चौथ, शिवरात्री, गणेश चौथ, आदि इनमें धार्मिक भावना छिपी होती है। जैसे अवधि में एक कथा भाई दूज की इस प्रकार से है वैसे ही करवा चौथ।

एक राजा था उसके सात बेटे और एक बेटी थी। बहन ने करवा चौथ का व्रत रखा था। शाम होते – होते बहन का मुरझाया चेहरा देखकर भाईयों से रहा न गया।

क्योंकि अपनी बहन से बहुत प्यार करते थे। इसलिए एक भाई बरगद के पेड़ पर चढ गया तथा वहाँ से रोशनी करके कहा बहन चाँद उग गया है कुछ खा लो। बहन ने चाँद समझकर अपनी पूजा करके व्रत तोड दिया दूसरे दिन उसके पति की मृत्यु हो गयी।

यह सब पार्वतीजी देख रही थी। उन्होंने महादेवजी से कहा यह तो पाप है। उसमें इसका दोष नहीं है। पाप तो उसके भाई ने किया है। तो महादेवजी ने कहा इसका एक उपाय है कि वह लड़की यदि सालभर अपने पति की मिट्टी संभालकर रखे और गणेशजी की पूजा करे और अगले साल विधि विधान से करवा चौथ करे तो उसका पति फिर जी उठेगा। यह सब बातें लड़की ने सुन ली और उसने वैसा ही किया। तब उसका पति फिर जिन्दा हो गया। इस प्रकार से इन कथाओं में धार्मिकता तथा लोकजीवन की सुन्दर झाँकिया देखने को मिलती है।

गाँव के लोग अक्सर इकट्ठे होकर अपनी समस्याएँ कहते तथा कथा कहकर उसको सुलझाने की कोशिश करते। कुछ कथाओं में गीत भी, दोहे भी मिले होते हैं।

इसी प्रकार से अवधि की कुछ और कथाएँ है। जिसको लम्बी – लम्बी भूमिका बाँधकर भी कहते हैं।

'(जैसे बात की बात, कुराफात की कुराफात, बकरी को चर गए, बेटी के तीन पात, काँटे की ऐनी में बसे तीन तालाब, दो सुख साख गए, एक भरा ही नहीं, जो भरा ही नहीं उसमें उतरे तीन तैराक, दो डूब डाब गए, एक डूबा ही नहीं आदि।

इसी प्रकार बुन्देलखंड की कथा भी है – किस्सा की झूंठी न बातें – सी मीठी, घड़ी – घड़ी को विश्राम, को जाने सीताराम, न कैबे बारे को दोष न सुनने बारे को दोष। जरिया को काँटी, असरा हाथ लाँबो, आधो छिरियाने चरलब, आधे पे बसे

तीन, गाँव, एक ऊजर, एक खजूर, एक में मानस ई नैया, जी में मानस ई नैया ऊ में बसे तीन कुम्हार, एक टूंढा, एक लूला, एक कै हाथ ई नैया आदि।)[८]

इन कथाओं का कोई आधार या रचेयता नहीं होता। जैसी परिस्थितियाँ आती गयी कथाएँ बनती गयी। कुछ अनुभव के आधार पर, कुछ सुनी हुई पुरानी बातों से, बस कथा बन गयी।

कुछ आदिम जातियों की कथाओं की खोज की गई तो पाया गया कि प्राचीन कथाएँ गाथाओं के रुप में ही रही होंगी।

कथाएँ एक कुमार्गी जीवन से उस व्यक्ति को सुमार्गी जीवन तक ले जाती है। ईसप की फेबल या कथाएँ संसारभर में मानी हैं। कुछ आदिम युग की कथाओं में पशु – पक्षी, मनुष्य की तरह बोलते हैं। जैसे हिन्दी में पदमावत में हरीमन तोता पंडित है और प्रेम का मार्ग दिखलाता है।

कुछ कथाओं में पशु कभी – कभी मनुष्य का रुप धर लेते है और मनुष्य पशु का। वैसी ही एक अवधि की कथा है। बहुत सी भारतीय लोककथाओं में पुर्नजन्म की बात भी कही गयी है।

लोककथाओं की विशेषताएँ :

लोक कथाओं को आठ भागों में बाँटा गया है।

१. प्रेम का अभिन्न पुट

२. अश्लील श्रंगार का अभाव

३. मनुष्य की मूल प्रवृतियों से निरंतर साहचर्य

४. मंगल – कामना की भावना

५. सुख और संयोग में कथाओं का अन्त

६. रहस्य, रोमांच एंव अलौकिकता की प्रधानता

७. उत्सुकता की भावना

८. कान की स्वाभाविकता

(१) इन कथाओं में प्रेम की भावना छिपी होती है। वह माता – पिता, भाई – बहन आदि अलौकिक प्रेम होता है।

(२) इन कथाओं में प्रेम भावना प्रचुर मात्रा में होते हुए भी अश्लीलता का अभाव होता है। कहानियों में अब भले ही हो परन्तु लोक कथाओं में नहीं होता।

(३) मनुष्य की जो मूल प्रवृतियाँ होती है जैसे सुख – दुःख, आशा – निराशा, काम, क्रोध, मद, लोभ, ईष्या – द्वेष आदि सब इन कथाओं में विद्यमान होता है।

(४) इन कथाओं में यही एक श्रेष्ठता होती है कि इसमें हमेशा कल्याण की बातों को ध्यान में रखकर ही कथाएँ बनायी जाती है। इनका उद्देश्य ही संसार का कल्याण करना होता है।

(५) इन कथाओं का अंत दुखांत ना होकर सुखांत होता है। इसमें ऐसा नहीं कि दुःख आया ही ना हो, परन्तु मनुष्य हमेशा दुःख से उबरकर सुखों की प्राप्ति किस प्रकार करता है, मनुष्य निराशा से आशा की ओर किस प्रकार बढता है. यही इन कथाओं का उद्देश्य होता है। सभी को जीवन में दुःख के बाद सुख प्राप्ति होती है यह भावना से इन कथाओं को सुनाया जाता है।

(६) इन कथाओं में रहस्य रोमांच, दानव, परि, भूत – प्रेत, आदि वस्तुओं का भी मिश्रण होता है। जिससे कथाएँ रोचक बनती है।

(७) कथाओं या कहानी का मूल उत्सुकता पर ही टीका होता है। यदि उत्सुकता समाप्त हो जाएगी तो कथा सुनने का आनंद भी नहीं आयेगा। इसलिए आगे की कथा क्या होंगी यह उत्सुकता बनाये रखना भी एक विशेषता है।

(८) कथाएँ स्वाभाविक लगना भी एक बहुत बड़ी विशेषता है। कथा को बढ़ा – चढाकर कहने से उसका गुण समाप्त हो जाता है। कथा को सरल तथा स्वाभाविक (सच) लगना बहुत बडा गुण है जो गाँव की कथाओं में देखने को मिलता हैं। उदा. – तिरिया चरित्तर शीर्षक कहानी में स्वाभाविता भरी हुई है।

लोककथाओं में भाषा शब्दों का सरल प्रयोग :

लोककथाओं में भाषा शैली सरल तथा सबको समझ में आये ऐसी होती है। इसमें जो साधारण सरल शब्द मुँह से निकल आते हैं, वही इसका सौन्दर्य बन जाते है।

लोक शब्द का अर्थ :

[१]('लोक' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है एक ओर तो यह शब्द अपने विश्व अथवा समाज को समेट लेता है तो दूसरी ओर यह जन सामान्य के गर्व का भी द्योतक है। ऋगवेद में प्रयुक्त 'देहि लोकम्' के अनुसार लोक का स्थान के अर्थ में एक प्रयोग मिलता है अशोक के शिलालेखों में लोक का प्रयोग समस्त प्रजाजनों के हित में हुआ है। यजुर्वेद में 'लोक–समाज' की एक विराट कल्पना की गई है वह पुरुष रुप ईश्वर है, उसके सहस्त्रों मुख, सहस्त्रों नेत्र और सहस्त्रों पद हैं।

सहस्त्र शीर्षा पुरुषा, सहस्त्राक्षः सहस्त्र पात्।

यह श्लोक अनेक रुपों में परित्याप्त है–

बहु व्यहितों वा अय बहुशों लोकः

श्री श्याम परमार के अनुसार जिसे संस्कृति की संज्ञा दी जाती है वह 'लोक' से भिन्न नहीं है।

हमारा ग्रामीण समाज 'लोक' का महाप्राण है और ग्रामीण संस्कृति 'लोक' का प्रतिनिधित्व सा करती हुई दिखाई देती है, एक विशेषण के रुप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीप समझा जाता है।

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है, और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।''

वास्तव में 'लोक' का अर्थ उस जन समाज से है जो विस्तृत रुप में इस पृथ्वी पर फैला हुआ है, और जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित हैं 'नर – लोक' शब्द का प्रयोग उस शब्द के अर्थ की व्यापकता का द्योतक है। वास्तव में देखा जाय तो 'लोक' शब्द अपने प्रयोग के आधार पर अलग – अलग अर्थ देने लगता है जैसे यदि उसी 'लोक' के साथ 'गीत' शब्द लगा दे तो एक दम आँखो के सामने गाँवों के जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ जनसमाज आँखों के सामने घूम जाएगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि लोकगीत मात्र गाँवों के ही हैं वरन् इन गीतों पर शहरी संस्कृति की छाप भी दृष्टिगोचर होती है, कहने का तात्पर्य इतना ही है कि 'लोक' शब्द प्रयोग सापेक्ष है।

'फोक' एवं 'लोक' :

अंग्रेजी के Folk शब्द की उत्पत्ति Folo से हुई है यह ऐंग्लो – सेक्सन शब्द है जो जर्मनी में Folk के रुप में प्रचलित है आंग्ल भाषी प्रयोग की दृष्टि से 'फोक' असंस्कृत और मूढ़ समाज अथवा अच्छा द्योतक है पर सर्व साधारण और राष्ट्र के सभी लोगों के लिए भी इसका प्रयोग होता है।

अंग्रेजी के 'फोक' शब्द का पर्यायवाची 'लोक' शब्द है वैसे इसके लिए हिन्दी में 'ग्राम' और 'जन' का भी प्रयोग होता है त्रिपाठीजी ने 'फोक–सांग' का अर्थ 'ग्राम गीत' किया है। देवेन्द्र सत्यार्थी और सुधांशु ने भी इसी शब्द का प्रयोग किया है।

श्याम परमार के अनुसार 'जन' शब्द काफी प्राचीन है। एवं पाली ग्रंथों में मानव समाज का बोध जन से कराया जाता है। इसलिए 'जन' और 'लोक' में काफी सप्राणत्व है। प्रयोग और परम्परा के भव्य 'कैनवास' में आधुनिक 'लोक' की अनुभवता के लिए 'लोक' ही अधिक उपयुक्त एवं प्रतिबिम्बात्मक है। रही 'ग्राम – गीत' शब्द की बात सो त्रिपाठी जी के 'ग्राम – गीत' शब्द में व्यापकता का अभाव है। डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय का कहना है – 'ग्राम – गीत' शब्द में लोक गीत शब्द की सी व्यापकता का अभाव है। ग्राम के अतिरिक्त ऐसा ही एक विस्तृत समाज है जिसकी अपनी धारणाएँ है, विश्वास है, गीत है भारत की सम्पूर्ण मानवता को ग्राम और नगर की सीमा में बाँधना उचित नहीं है क्योंकि साधारण जनता केवल ग्राम तक ही सीमित नहीं है। लोक की सीमा बड़ी व्यापक है व उसमें ग्राम और नगर का समन्वय अविच्छिन्न है। यह बात और है कि ये गीत अधिकतर गाँवों में गाये जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'फोक' का समानार्थी व उपयुक्त शब्द 'लोक' ही हो सकता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व. सूर्यकरण पारीक

आदि ने लोक शब्द का ही प्रयोग किया है क्योंकि 'लोक' शब्द उस व्यापकता के भाव को लिए हुए है जिसका 'ग्राम' शब्द में अभाव है।)[९]

[१०](एक विद्वान ने लिखा है –

संसारभर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं उनसे अपने आप को परिचित कराना संस्कृति है।

प्रो. वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं कि संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का महत्वपूर्ण प्रकार रही है। हमारे जीवन का ढ़ंग हमारी संस्कृति है संस्कृति हवा में नहीं रहती उसका मूर्तिमान रुप होता है। जीवन के नानाविध रुपों का समुदाय संस्कृति है साहित्य कला, दर्शन और धर्म से जो मूल्यवान सामग्री हमें मिल सकती है, उसे नये जीवन के लिए ग्रहण करना, यही सांस्कृतिक कार्य की उचित दिशा और सच्ची उपयोगिता है।

पंडित नेहरु ने संस्कृति को आन्तरिक और बाह्य दोनों रुपों में जोड़ने का प्रयास किया है उनके अनुसार ''संस्कृति'' का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसके नैतिक उन्नति है। एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार और दूसरे को समझने की शक्ति है।

भगवत शरण उपाध्याय संस्कृति को सामाजिक संदर्भ के साथ जोड़ते हुए लिखते हैं ''संस्कृति का संबंध सामाजिक जीवन से अधिक है जब आदमियों का एकदम या समाज एक ही रीति से कुछ करता है एक ही विश्वास रखता है एक ही प्रकार के आदर्श सामने रखता है। अपने पुरखों के कामों को समान रुप से आदर, गर्व, गौरव की चीज समझता है तब संस्कृति का जन्म होता है संस्कृति आदमी के सामाजिक जीवन का प्राण है।

प्रसिद्ध विद्वान डॉ. सत्यकेषु विद्यालंकार के अनुसार –

''मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है, उसी को संस्कृति कहते है। मनुष्य ने जो धर्म का विकास किया, दर्शनशास्त्र के रुप में जो चिन्तन किया, साहित्य, संगीत और कला का सृजन किया, सामूहिक जीवन को हितकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रयासों और संस्कारों को विकसित किया उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं।

समाजशास्त्र के विश्व – कोष में श्री मैलिनोवस्की ने संस्कृति को व्यापक रुप में ग्रहण करते हुए कल्चर को निम्नांकित रुप में परिभाषित किया है।''

''इसमें पैतृक निपुणतायें, श्रेष्ठतायें, कलागत प्रक्रिया, विचार, आदतें और विशेषताएँ सम्मिलित रहती हैं, अतः संस्कृति का सम्बन्ध दर्शन और धर्म से लेकर सामाजिक संस्थाओं की रीति – रिवाजों तक मानव जीवन की समस्त समत्वपूर्ण प्रणालियों से है।

कल्चर की सर्वप्रथम सर्वांगीण विवेचना करने वाले सुप्रसिद्ध मानवशास्त्री टाइलर के शब्दों में – 'संस्कृति नियमों का वह समुच्चय है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आदर्श, विधि, क्षमतायें और आदतें सम्मिलित रहती हैं जिन्हें मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।'

उक्त परिभाषा में समाज के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य की समस्त चेष्टाएँ ही सम्मिलित की गई है। श्री राम जी उपाध्याय लिखते हैं – 'मानव ने जो प्रगति की है उसके मूल में बुद्धि और सौन्दर्य की अभिरुचि है, इनका अवलम्बन लेकर वह संसार की यथेष्ट रुपरेखा बनाता जा रहा है, वह स्वभावतः किसी रचना को पूर्ण मानकर संतोष नहीं कर लेता बल्कि नित्य ही कल की वस्तुओं को यथा – शक्ति पूर्ण या सुन्दर बनाने का

प्रयत्न करता है। सुन्दर बनाने, सुधारने या पूर्ण बनाने का प्रयत्न मनुष्यों की बुद्धि एवं सौन्दर्य भावना के विकास का परिचय देता है, मानव का यही विकास संस्कृति है, संस्कृति का मूल अर्थ सुधारना या पूर्ण बनाना है। इस परिभाषा में मनुष्य के सौन्दर्यबोध के साथ पूर्णता का प्रयास सिद्ध होता है। सम्भवतः सुन्दर में शिव की कल्पना भी विदित है।

सुप्रसिद्ध कवि दिनकर संस्कृति की व्यापक परिभाषा करते हुए कहते हैं – ''संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं, अथवा जिस समाज में हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी है, यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति के अंग बन जाते हैं, और मरने के बाद अपनी वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड जाते हैं। इसलिए संस्कृति वह चीज़ मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म जन्मान्तर तक करती है।''

डॉ. देवराज लिखते हैं – कि ''संस्कृति वस्तुतः उन गुणों का समुदाय है जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त करता है संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यतः मनुष्य की बुद्धि स्वभाव और मनोवृत्तियों से है। संक्षेप में सांस्कृतिक विशेषतायें मनुष्य की बुद्धि एवं उनके स्वभाव की विशेषताएँ होती है।

इन विशेषताओं का अनिवार्य सम्बन्ध जीवन के मूल्यों से होता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ''किसी भी जातीय अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो रुप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है।

नर विज्ञान में मनुष्य और मनुष्य जीवन तथा समुदाय की सर्वांगीय व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के नर-विज्ञानी टाइलर ने संस्कृति के अन्तर्गत सामाजिक प्राणी मनुष्य के ज्ञान, रीति-रिवाज, योग्यताओं और आदतों को समाविष्ट किया है।)[१०]

लोककथाएँ :

[११](इधर शिव-पार्वती से संबंधित अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं। इन कथाओं में पार्वती का दीन-दुखियों के प्रति दयार्द्र भाव और कष्ट निवारण उल्लेखनीय हैं।

१. संतानहीन साहूकार और पार्वती

किसी नगर में एक साहूकार रहता था। वह संतान-विहीन था। संतान-प्राप्ति के लिए वह प्रति सोमवार को शिव मंदिर जाता और जल चढ़ाकर संतान-प्राप्ति की प्रार्थना करता। बारह वर्ष बीत गए। साहूकार के घर किसी संतान ने जन्म नहीं लिया। पार्वती उसके कष्ट को नहीं देख सकी। उसने शिवजी से कहा – महाराज, आपका उपासक १२ वर्ष से आपकी सेवा कर रहा है। आप इन पर प्रसन्न क्यों नहीं होते? शिव ने कहा – इनके भाग्य में संतान नहीं है। पार्वती ने कहा – महाराज, बिना संतान के घर भूतों का डेरा है। आप कृपा करें और इसे संतान का वरदान दें। शिव ने कहा – पार्वती, तुम संसार में किस-किसका दुःख बाँटोगी? लो, अगर तुम कहती हो तो इनके पुत्र जन्म का आशीर्वाद देता हूँ, किन्तु वह बालक बारह वर्ष की आयु प्राप्त करेगा।

शिव के आशीर्वाद से साहूकार के घर पुत्र रत्न ने जन्म लिया। साहूकार को बालक की अल्प आयु के विषय में जानकारी थी। जब वह बालक १२ वर्ष का होने

को आया तो उसके पिता ने कहा – बेटा, तुम शिव की नगरी काशी चले जाओ। मार्ग में भजन–किर्तन करना, शिव की स्तुति करना और गरीबों को दान देना।

साहूकार ने बालक के मामा को उसके साथ भेज दिया। एक दिन वे मार्ग में किसी धर्मशाला में ठहरे। वहीं एक बारात रुकी हुई थी। दूल्हा एक आँख से काना था। दूल्हे का पिता ऐसे वर की खोज में था जो दुल्हन के साथ फेरे तो ले लेकिन बाद में दुल्हन को लौटा दे। साहूकार का लड़का विवाह के लिए मान गया। दुल्हन वहाँ के नगर के राजा की पुत्री थी। विवाह के समय साहूकार के लड़के ने दुपट्टे के कोने में कुछ लिखा और दुल्हन उस संकेत को समझ गई। दूल्हा फेरों के बाद लुप्त हो गया और दुल्हन ने संदेश पढ़कर अपनी ससुराल जाने से इन्कार कर दिया। वह सब घटना देख पार्वती ने कहा – महाराज, या तो इस बालक का विवाह नहीं करवाते या फिर दो आत्माओं को यों दुःख न देते। शिव ने उत्तर दिया – यह सब कर्म का फल है।

साहूकार का लड़का अपने मामा के साथ काशी की यात्रा पर चल दिया। बारहवें वर्ष का अंतिम दिन आया। साहूकार के लड़के की तरफ से बड़े भंडारे का आयोजन था। बारह ब्राह्मण भोजन कर रहे थे और अंदर लड़के ने प्राण त्याग दिए। मामा ने भेद को गुप्त रखा कि कहीं ब्राह्मण बीच में भोजन छोड़कर न चले जाएं।

पार्वती से मृत्यु का दृश्य न देखा गया। उसने शिवजी से कहा – महाराज, यह तो अनर्थ हो गया। उस बेचारी लड़की का क्या दोष था जिसका विवाह हुआ, पति त्याग हुआ और विधवा भी हो गई। आपकी नगरी में ऐसा अनर्थ ! मैं महिला हूँ, मुझसे यह अनर्थ देखा नहीं जाता, आप अपने कमंडल से गंगाजल का छींटा दें, यह जीवित हो उठेगा। पार्वती की बात सुनकर शिवजी बोले – तुम भी अपने पतिव्रत धर्म का परीक्षण करो। अपनी चिटली (कनिष्ठा) उंगली के खून के तीन छींटे दो। पार्वती ने

ऐसा ही किया और वह लड़का यह कहता हुआ उठ खड़ा हुआ – बहुत सोए। बहुत सुख की नींद सोए।

शिव – पार्वती वहीं अंतर्धान हो गए। पार्वती ने कहा – महाराज, आपने इतनी कृपा की है तो दूल्हे और दूल्हन की ये जोड़ी फिर से मिला दो। अब तो दो भाग्य आपस में मिलकर नई शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं।

साहूकार का लड़का अपने मामा के साथ उसी नगर से लौट रहा था जहाँ उसका विवाह हुआ था। राजा के दूतों ने उसे पहचान लिया और पकड़कर राजा के पास ले आए। राजकुमारी ने भी उसे पहचानने में एक क्षण न लगाया।

राजा ने अपनी पुत्री की सम्मान के साथ साहूकार के लड़के के साथ विदाई कर दी। माता–पिता अपने पुत्र को दुल्हन और दान – दहेज के साथ आया देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा – यह सब शिव – पार्वती का प्रताप है।

कथाकार का कहना है कि साहूकार के परिवार पर जैसे पहले बीती वैसे किसी पर न बीते। उस परिवार के जैसे अच्छे दिन लौटे वैसे सभी के दिन लौटें।

यह कथा अलौकिक चमत्कार, एक आस्तिक की श्रद्धा, देवताओं की दयालुता, काशी नगर का महत्व, दान करने का फल, पति भक्ति आदि सांस्कृतिक धारणाओं को स्थापित करने के लिए लिखी गई प्रतीत होती है। इसमें भाग्यवाद और भगवान में अटल आस्था चरम सीमा पर है।

२. चींटी को कण हाथी को मन

एक दिन शिव – पार्वती में जीवों पर दया करने की भावना पर चर्चा हो रही थी। शिव ने कहा – पार्वती, मुझे सभी चराचर प्राणियों के भोजन के प्रबन्ध की चिंता रहती है। मुझे चींटी के कण और हाथी के लिए मन भर खाद्य पदार्थ जुटाना पड़ता है।

रात गई बात गई। अगले दिन पार्वती ने कहा – महाराज, क्या आज भी आपने सभी प्राणियों को भोजन खिलाया है? शिव ने उत्तर दिया – हां। पार्वती ने कहा – महाराज, आपके संसार में आज एक चींटी भूखी मर रही है। शिव ने कहा – असंभव। पार्वती बोली – प्रत्यक्ष को प्रमाण किया, उसने झट से अपनी सिंदूर की डिबिया खोली और शिव की ओर बढ़ाते हुए कहा – यह देखो भूखी चींटी।

शिव ने कहा – मैं क्या देखूं, अपनी आँखों से स्वयं देखो। इसके लिए यहाँ भर – पेट भोजन की व्यवस्था है। पार्वती ने देखा कि उसकी सिंदूर की डिबिया में चावल के कुछ दाने पड़े हैं और चींटी उनका आनंद लूट रही है।

३. गणेश

गणेश भारतीय देवताओं में प्रथम पूज्य और सर्व–सुलभ देवता हैं। इनकी मूर्ति विभिन्न प्रकार के प्रस्तरों, धातुओं, काष्ठ खंडों से निर्मित की जाती है। अभाव की स्थिति में सुपारी, मृत्तिका पिंड, हल्दी, दूर्वा, गोमय या अर्क की जड़ के चारों ओर मौलि (कच्चा धागा) लपेटकर गणेश की प्रतिमा बनाई जा सकती है। ओंकार और स्वास्तिक के चिन्ह गणेश का प्रतिनिधित्व करते हैं।

गणेश या गणपति का संदर्भ ऋग्वेद (२.२३.१) में मिलता है। गणेश पुराण इनके समस्त चरित्र को छायांकित करता है। कुछ लोग ब्रह्मा का परिवर्तित रूप गणेश में देखते हैं। अन्य विद्वान इन्हें शिव के पुत्र मानते हैं। कोई इन्हें पार्वती पुत्र तो कोई

इन्हें अयोनिज कहते हैं। गणपत्य संप्रदाय के अनुयायी इन्हें सृष्टि का कर्ता, भर्ता और हर्ता मानते हैं क्योंकि इनकी उपस्थिति शिव–पार्वती के विवाह के समय थी और उन्होंने इसकी उस समय पूजा भी की थी।

आकृति, गुण, स्वभाव औक कर्म के कारण इन्हें अनेक नामों से जाना जाता है – गजानन, लंबोदर, एकदंत, शूर्पकर्ण, विनायक, विघ्नराज, विघ्नेश, द्वैभातः, आखुग, हेरंब, गणाधिपति, परशुपाणि, महागणपति, सनातन, गणपति।

यदि इनके माता–पिता शिव–पार्वती हैं तो ऋद्धि और बुद्धि इनकी दो पत्नियाँ हैं। इन्हीं प्रतिकात्मक पत्नियों से इनके दो संतानें हैं – क्षमा और लाभ। इनके बड़े भाई का नाम है कार्तिकेय।

गणेश के मंदिर में इनके गणों का स्थिति और शक्ति के अनुसार अपना – अपना स्थान है, यथा –

१. गजकर्ण – इनके बाईं ओर, २. सिद्धि – दाईं ओर, ३. गौरी – दक्षिण भाग में, ४. बुद्धि – पूर्व की ओर, ५. बालचंद्र – दक्षिण पूर्व में, ६. सरस्वती – उत्तर की ओर, ७. कुबेर – पश्चिम में, ८. धूमकेतु – पृष्ठ भाग में। गणपति के लिए द्वारपालों का होना भी आवश्यक है। इनके आठ द्वारपाल माने गए हैं – अविघ्न, विघ्नराज, सुरकृत्रा (बलवान) गजकर्ण, गोकर्ण, सुसौम्य, सुभदायक। ये सभी बौने हैं।

इनके हाथी के मस्तक तथा एकदंत होने के संबंध में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार शिव ने इनके मस्तक का छेदन किया क्योंकि गणेश ने पार्वती के स्नान के समय शिव का मार्ग रोका। दूसरी धारणा के अनुसार शनि के दृष्टिपात से इनका मस्तक भंग हुआ और हाथी का मुख स्थानापन्न किया गया। इसी प्रकार किन्हीं का कहना है कि परशुराम ने इनके एक दाँत पर उस समय प्रहार किया

जब वे दुष्ट क्षत्रियों का विनाश कर दक्षिण में शिव–पार्वती का दर्शन करने गए और गणेश इनके गृह–प्रवेश में बाधक बने। एक अन्य कथा के अनुसार चँद्रमा गणेश को देखकर हंस पड़े और इन्होंने क्रोध में आकर अपना एक दाँत उखाड़कर चँद्रमा पर दे मारा।

इनकी सवारी मूषक है जो कभी उपद्रवी क्रौंच नाम का गंधर्व था। गणेश अपने आयुधों – वज्र, शक्ति, दंड, खंग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म तथा चक्र द्वारा दुष्टों का दमन करते हैं।

गणेश की लोकप्रियता के कारण

समाज में कौन ऐसा व्यक्ति है जो किसी न किसी प्रकार की विघ्न–बाधा से न घिरा हो। ऐसी मानसिक स्थिति में विघ्न विनाशक गणेश से अधिक उपयुक्त कौन शरणदाता देवता हो सकता है।

गणेश की मूर्ति या प्रतीक बनाना सर्व–सुलभ है इसका संकेत पहले भी दिया जा चुका है।

गणेश को हरंब कहते हैं क्योंकि वे अजेय योद्धा और शक्ति के देवता हैं। भला कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो शक्ति संचय का लाभ नहीं उठाना चाहे। उनके वीर योद्धा के लक्षण उन द्वारा धारण किए जाने वाले आयुधों – फरशा, त्रिशूल, तलवार, अंकुश, पाश – से प्रकट हो जाते हैं।

बुद्धि–कौशल की शक्ति के इच्छुक भी इन्हें स्मरण करके शक्ति संचय करना चाहते हैं क्योंकि इन्होंने वेद – व्यास के आग्रह पर महाभारत ग्रंथ की पांडुलिपि लिखकर तैयार की थी।

किसान हाथी के मस्तक को इन्द्र का प्रतीक मानकर समय पर सुवृष्टि की कामना करते हैं। उनके चूहे का वाहन फसल और हानिकारक कीटों को विनष्ट करने का प्रतीक है।

व्यापारी उनके विशाल उदर में धनपति कुबेर के दर्शन करते हैं और अपने बही – खातों पर लक्ष्मी के साथ गणेश शब्द भी अंकित करते हैं।

बाल मंडली को वे इसीलिए स्वीकार्य हैं कि मोदकप्रिय गणएश के सम्मुख लड्डूओं का थाल रखा है। सदा बालरुप धारी गणेश उन्हें एक न एक दिन प्रसाद के लड्डूओं का सहभोगी अवश्य बनाएगा।

संसार का कौन व्यक्ति है जो अपने – अपने क्षेत्र में अपने आपको सर्वप्रथम पूज्य स्वीकार नहीं करना चाहता हो। गणेश सर्वप्रथम पूज्य हैं तो भला उनके उपासक तथा शरणागत में ऐसे गुण क्यों नहीं आएँगे।

गणेश प्रतिमा में प्रतीक

भारत की स्वतंत्रता के बाद हमने अशोक चक्र शोभित तिरंगा ध्वज, सारनाथ के बौद्ध संग्रहालय से सिंह की त्रिमूर्ति, महात्मा बुद्ध के धर्मचक्र, 'जन गण मन' तथा 'वन्दे मातरम्' को राष्ट्रीय चिन्ह, राष्ट्रीय प्रतीक, राष्ट्रगान – गीत सम्मान आदि के रूप में स्वीकार किया है। स्थूल वस्तुओं की पूजा में विश्वास न करने वालो भी इन प्रतीकों को भावात्मक स्तर पर सम्मान देते हैं। हमारे शिल्पकारों, कलाकारों, चित्रकारों ने गणेश के सभी अवयवों में किसी न किसी प्रतीक की स्थापना की है।

उनका वृहद् मस्तक बुद्धिमत्ता और गंभीरता का, वक्रतुंड भावी संकटों को संवेदनशील होकर भांपने का, गजकर्ण दसों दिशाओं की घटनाओं को उदारतापूर्वक सुनने का, भालचंद्र शांतचित्त से चिंतन – मनन का, तुंदिल उदर सुनी हुई सभी बातों

को आत्मसात करने का, पद्मासन योगाभ्यास का, परशु – अंकुश – सूली – गदा – चक्र आदि दांडनायक का, मोदक मधुर वाणी का, कुमुदिनी प्रकृति प्रेम, शुद्ध आचरण और पर्यावरण शुद्धि का, नाग यज्ञोपवित संसार के विष शमन का, मूषक वाहन कीट पतंग और विनाशक शक्तियों के मर्दन या दमन का, सिंदूर – स्नान जनाकार्य आत्मबलिदान आदि के प्रतीक हैं। यदि एक ही व्यक्ति में इतने गुण समाहित हो जाएँ तो भला वह क्यों नहीं सर्वप्रथम पूज्य होगा। प्रतिकवादी भारतीय संस्कृति भोले – भाले जनसमुदाय को मूकभाव से मूर्तियों के माध्यम से अपने ज्ञान – कोष का मुक्त हस्त से दान – प्रदान करती रही है।

वर्तमान संदर्भ में गणेश

भारत के सभी भागों में गणेश प्रथम पूज्य देवता हैं। दक्षिण भारत में इनके अनेक मंदिर हैं। उत्तर भारत में बिना गणेश की मूर्ति के किसी मंदिर की कल्पना नहीं की जा सकती। गणेश की मूर्ति मंदिर के बाहर शुभंकर के रूप में किसी गवाक्ष में या अन्य मूर्तियों के साथ देखी जा सकती है। महाराष्ट्र में पेशवाओं ने गणेश पूजा को विशेष स्थान दिया। १८९५ ई. से लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने गणेश उत्सव को जन – जागरण तथा राष्ट्र – जागरण के रूप में पुनः आरम्भ कर स्वाधीनता आंदोलन में असाधारण योगदान दिया। वर्तमान भारतीय गणतंत्र पर आधारित राजनीति गणेश के स्वभावानुकूल सहनशील, उदार और शत्रु दमनकारी है।

पांडवों की पुरानी राजधानी इन्द्रप्रस्थ के स्थान पर विराजमान स्वतंत्र भारत की राजधानी दिल्ली का चिन्ह इन्द्र का प्रतीक हाथी ही रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय ने इस बुद्धिमत्ता के संकेत को ग्रहण करके अपना प्रतीक हाथी ही स्वीकार किया जो इसके भव्य भवनों, पुस्तकालय, कला संचय भवन के अतिरिक्त इस द्वारा वितरित

उपाधियों पर भी अंकित रहता है। जैसे विभिन्न प्रांत अपने स्थानीय राज प्रतीक में वहाँ का कोई सांस्कृतिक बिंदु प्रदर्शित करते हैं वैसे स्थानीय दिल्ली सरकार हाथी को प्रतीक मान सकती है।

लोक मानस और गणेश

गणेश देव का विकास गिरि कन्दराओं के निवासियों के बीच आरंभ होकर कवि – कोविद और कलाकारों द्वारा राज महलों तक अनेक माध्यमों द्वारा स्थापित किया गया। लोक – मानस में इसका स्थान सदा अन्सून बना रहा है। आज भी भवन – निर्माण के समय घर के बाहर गणेश की मूर्ति या प्रतीक स्थापित किया जाता है जो विघ्नों को दूर रखने की कामना का द्योतक है। गरीब से गरीब व्यक्ति किसी मानसिक कार्य में कच्ची मिट्टी की डली पर कच्चा धागा बांधकर, या सिंदूर, रोली, हल्दी के चूर्ण में जल मिलाकर गणेश का प्रतिमान मान लेता है। यदि कुछ मिष्ठान्न न भी मिले तो चावल या दूर्वा चढ़ाकर उसे प्रसन्न कर देता है।

विवाह के समय वरयात्रा के अवसर पर अश्वारोही दूल्हे के आगे जिस बालक को बैठाया जाता है वह भी शुभंकर गणेश का ही प्रतीक है। कुआँ खोदते या हल जोतते समय मृत्तिका स्पर्श गणेश पूजा का प्रतीक है। गाय – भैंस के पहले दूध का कुछ अंश मिट्टी के पात्र में बाँधकर रखा जाता है वह भी गणेश भोग है। शुभ कार्य के लिए गमन में सर्वप्रथम गणेश का स्मरण करके कदम बढ़ाया जाता है।

पाटी पूजन के समय पहला वाक्य 'श्री गणेशाय नमः' लिखवाया जाता है। स्वस्तिवाचन के रूप में गणेशवंदना के निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोकों का उच्चारण किया जाता है :–

गजाननं भूतगणाधिसेवितं

कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।

उमासुतं शोकविनाशकारकं

नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम्।।

वक्रतुण्ड महाकाय, सूर्यकोटि समप्रभ।

निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्व कार्येषु सर्वदा।।

लोक – साहित्य में गणेश

लोक गायक, और लोक कथाकार सभी अपना कार्य गणेश वंदना से आरम्भ करना शुभ मानते हैं। इस परिपाटी के पीछे बुद्धिकुशल देवता का स्मरण तथा कार्य के निर्विघ्न रहने की भावना काम करती है। यहां इसी उक्ति के प्रमाणस्वरूप लोक–साहित्य से कुछ संदर्भ दिए जा रहे हैं।)[११]

लोक मानस : जन मानस अथवा लोक – संस्कृति

[१२](''लोक मानस'' शब्द लोक – संस्कृति का पर्याय है। लोक साहित्य वाणीगत अभिव्यक्ति है। वाणीगत अभिव्यक्ति में संस्कृति की छाप को सुरक्षित रखने वाला स्थूल तत्व नहीं होता, अतः उस संस्कृति से जिस मानस का तादात्म्य रहता है, वह वाणी में अवश्य प्रकट होता है। इसीलिए ''लोकमानस'' शब्द अधिक अनुकूल है।

लोक साहित्य में समस्त लोकमानस मुखर रहता है, अर्थात् मौखिकता एवं रचयिताओं की अज्ञातता के कारण इसमें समस्त लोक की वाणीगत विशेषताएँ एवं गुण उद्भासित होते हैं। लोक साहित्य का सृजक क्योंकि एक साधारण एवं अकृत्रिम

समाज का प्रतिनिधित्व करता है, अतः उसकी दृष्टि में साधारणता एवं सहजता का होना स्वाभाविक है। इसी साधारण अथवा अकृत्रिम समाज के व्यक्तियों (जन – समूह) के विचार, मनोविकार, चेष्टाएँ इत्यादि समस्त वाणीगत कलात्मक अभिव्यक्ति, लोक साहित्य में समाविष्ट रहती है, जिसमें चमत्कार, रचना – कौशल, कृत्रिमता एवं अलंकारों के स्थान पर अकृत्रिमता, सहजता, नैसर्गिकता, स्वाभाविकता तथा निरंलकारता के दर्शन होते हैं। इसी कारण लोक साहित्य को मूलतः 'लोक' का, 'लोक' के लिए तथा 'लोक' की सम्पत्ति कहा गया है।

लोक साहित्य में लोकमानस की अभिव्यक्ति के स्वरूप के विषय में विद्‌ानों में मतवैभिन्नय है। कई इसे रहस्यवादी मानते हैं और कई पराप्राकृतिक शक्तियों से अभिभूत, परन्तु सृष्टि के प्रति आदिम – मानव की सहज प्रतिक्रियाएँ ही लोकमानस की मूलाधार हैं, जिनकी सहज तथा प्रतिकात्मक अभिव्यक्ति लोक साहित्य के प्रत्येक अंग में व्याप्त है, वस्तुतः लोकमानस, लोक साहित्य का एक अपरिहार्य तत्व है।

लोक साहित्य : रचना – प्रक्रिया

लोक साहित्य की रचना – प्रक्रिया क्या है? इसकी विविध रचनाओं के लेखक कौन हैं? उनका सृजन कैसे हुआ? आदि, कई विचारात्मक प्रश्न हैं, जिनको पश्चिमी एवं पूर्वी विद्वानों ने अपनी अपनी धारणाओं के अनुकूल स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। श्री 'टेलर' के अनुसार, लोक साहित्य उस सामग्री से पूर्ण होता है, जो परम्परा के अनुसार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक, लेखक या निर्माता की प्रमाणिकता की छाप के बिना ही, अविरत रहती है। श्री 'टेलर' के इस मत की पुष्टि रूसी लोक साहित्य मर्मश, 'सोकोलोव' की इन सारगर्भित पंक्तियों द्वारा होती है। वे लिखते हैं, ''प्रायः लोग मौखिक साहित्य के ''व्यक्तित्व – शून्य'' (Impersonality) सिद्धांत

के समर्थन में लोक साहित्य के रचयिता की अज्ञातता की तर्कपूर्ण दलीलें प्रस्तुत करते हैं। परन्तु यह लक्षण नितान्त बाह्य तथा अन्तिम विश्लेषण करने पर भी आकस्मिक ही लगता है। लोक साहित्य की रचनाएँ अज्ञात, बेनाम अथवा अस्पष्ट इस कारण हैं, कि अधिकतर लेखकों के नाम उद्घाटित नहीं हुए हैं, उनकी खोज नहीं हुई है, क्योंकि अधिकांश वे लिखे ही नहीं गए थे, प्रत्युत जनता की स्मृतियों में ही प्रायः सुरक्षितर है।''

लोक साहित्य की उत्पत्ति, तथाकथित सामूहिक – विधि (Communal-Growth) द्वारा नहीं हुई है, वरन् प्रत्येक कृति का बीजारोपण एक व्यक्ति द्वारा हुआ है। प्रक्षेपण आदि के कारण कालान्तर में इसका रूप सामूहिक – सा हो गया है। वस्तुतः गीत हो अथवा कथा, पहेली हो अथवा गाथा, सृजन मूलतः एक व्यक्ति द्वारा हुआ है, जिसने निजी चातुर्य अथवा साधारण प्रतिभा द्वारा गीत का सृजन किया, कहानी को गढ़ा अथवा लोकोक्ति का बीजारोपण किया। प्रकाशन की सुविधाओं के अभाव के कारण उसकी रचनाएँ लिपिबद्ध न हो सकीं, अतः मौखिकता से उन का प्रसार होने के साथ – साथ, उनके रूप परिवर्तित हुए। धंधावर लोक – गायकों ने उनमें अपनी प्रतिभानुसार प्रक्षेपण किए तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते – पहुँचते इन रचनाओं में स्थानीयता का रंग भी चढ़ता गया, और कालानान्तर में अब इतनी विकृत हुईं कि इन के मूल रूप का निर्णय करना अत्यन्त कठिन हो गया। यही कारण है कि आज लोक साहित्य की एक ही रचना के कई रूप उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः लोक साहित्य को जन – मानस (लोक – मानस) की सम्पत्ति मानने में कोई आपत्ति नहीं, परन्तु जन – समूह ने सामूहिक रूप से इसका सृजन अथवा निर्माण किया हो, यह नितान्त भ्रामक तथा आपत्तिजनक धारणा है।

लोक साहित्य तथा साहित्य में परस्पर सम्बन्ध :

लोक साहित्य का शिष्ट साहित्य से क्या सम्बन्ध है; इसे साहित्य की श्रेणी में रखा जाए या नहीं? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। साहित्य मानव के अकृत्रिम मनोवेगों से पूर्ण होता है। यह अभिव्यक्ति का एक अकृत्रिम रूप है। मनुष्य की समस्त चेष्टाएँ तथा बोधन शक्तियाँ इसके अन्तर्गत समाविष्ट है। इस दृष्टि से लोक साहित्य, साहित्य का एक अभिन्न अंग है। इसके अतिरिक्त यदि ''साहित्य'' शब्द को इसके संकुचित अर्थ में न लेकर विस्तृत अर्थ में लिया जाए, अर्थात् जब हम ''साहित्य'' से मात्र कलात्मक रचनाएँ ही नहीं, वरन् सामान्य मौखिक कलात्मक सृजन भी समझें, तो अवश्य ही लोक साहित्य, साहित्य का एक विशेष अंग बन जाता है। ''लोक साहित्य को साहित्य के अन्तर्गत न मानने वाले विद्वान प्रायः अपनी धारणा का समर्थन इस तर्क पर करते हैं कि इसमें ''कलात्मकता'' का अभाव है। परन्तु इस तथाकथित ''कलात्मकता'' के अभाव को किस प्रकार का अभाव समझा जाए, जबकि लोक साहित्य की प्रत्येक रचना का विश्लेषण करने पर कला (साहित्यिक कला) के पर्याप्त तत्व इसमें सहज ही प्राप्त होते हैं।'' लोककथा, कहावत, गीत आदि के विवेचनोपरान्त प्राप्त सामान्य कलात्मक तत्वों की साहित्यिक कलापक्ष से तुलना करने पर, लोक साहित्य – कला की उत्कृष्टता का परिचय सहज ही मिलता है। मौखिक परम्परा में रहकर भी ऐसे कलापूर्ण जीवन्त अस्तित्व को बनाए रखना, लोक साहित्य की प्रामाणिकता एवं सशक्तता का द्योतक है। श्री 'पोटर' के ये शब्द कि ''लोक साहित्य वास्तविक जीवाश्म (Fossil) है, अतः यह नष्ट नहीं होता,'' निस्संदेह सार्थक हैं। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि लोक साहित्य, रचनात्मक अथवा लिखित साहित्य से पूर्व की अभिव्यक्ति है। आदिम – मानव ने अपने मनोवेगों की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम मौखिकता से ही की होगी। तदुपरान्त लिपि के आविष्कार अथवा प्रचार –

प्रकाशन की सुविधाओं की उपलब्धि के पश्चात्, लिखित साहित्य का प्रणयन हुआ होगा। इस दृष्टि से, लोक साहित्य, साहित्य (लिखित साहित्य) का जनक है। वस्तुतः इन दोनों मानव – अभिव्यक्तियों का चिरकाल से घनिष्ठ, परस्पर सम्बन्ध रहा है। किसी भी युग के लिखित साहित्य के भाव अथवा कलापक्ष पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होगा कि उस पर लोक साहित्य के विषय एवं शैली का पर्याप्त प्रभाव रहा है। और यह प्रक्रिया आज भी निरन्तर गतिमान है। आधुनिक गीतिकाव्य पर लोक – गीतों के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः लोकवार्ता की व्याप्ति, प्रत्येक काल एवं युग के साहित्य में उसी प्रकार मिलती है, जिस प्रकार पूर्वजों का रक्त उनकी संतत्ति में मिलता है।

यह सत्य है कि मौखिकता में रहने के कारण, लोक साहित्य का कलापक्ष उतना परिपक्व न हो सका जितना प्रायः लिखित साहित्य का होता है, परन्तु इसका आशय यह भी नहीं कि लोक साहित्य उस कलात्मकता से पूर्णतः शून्य है जो वस्तुतः साहित्य में दृष्टव्य है। कला की स्वाभाविकता एवं सरलता लोक साहित्य के प्रत्येक स्पन्दन में व्याप्त है, भले ही इसमें साहित्यिक चमत्कार अथवा वक्रता न हो। वस्तुतः लोक साहित्य का कलापक्ष किसी भी अर्थ में गौण नहीं, उसका निजी महत्त्व, रोचकता एवं सौन्दर्य है। इसका अवलोकन ही इस दृष्टि से होता है कि इसके श्रेष्ठ कलात्मक तत्वों, प्रआतिभा, सौन्दर्य, आकर्षण, प्राँजलता, संगीतात्मकता एवं सशक्तता का मूल्यांकन हो। प्रत्येक साहित्यिक रचना का कलापक्ष, रचयिता की सौन्दर्यानुभूति से निखरता है। अतः लोक साहित्य का रचयिता, क्योंकि लोक – मानस का प्रतिनिधि होता है, इस कारण उसकी सौन्दर्यानुभूति में लोक – मानस जैसी ही सहजता एवं स्वाभाविकता का होना स्वाभाविक है। वस्तुतः लोक साहित्य में इसी सहजा सौन्दर्य एवं अकृत्रिम कला के दर्शन होते हैं। लोककथा, लोकगीत, गाथा

अथवा लोक में प्रचलित लोकाक्तियों में इसी सहज सौन्दर्य – दृष्टि, शब्द – चयन, प्रतीक – विधान तथा उपमा – योजना आदि की उपयुक्त सामग्री प्राप्त होती है। पुरख्यान एवं पौराणिक तत्वों का जितना समावेश लोक साहित्य में है, उतना संभवतः लिखित साहित्य में भी नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त भाषा एवं शब्द – चयन की दृष्टि से भी लोक साहित्य का महत्व लिखित साहित्य से अधिक है। बोलचाल एवं आँचलिक शब्दावली के जितने सफल प्रयोग लोक साहित्य में हुए हैं, उतने लिखित साहित्य में दृष्टिगत नहीं। वस्तुतः समग्र रूप से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पारस्परिक आदन – प्रदान के फलस्वरूप, लोक साहित्य एवं लिखित साहित्य का पर्थक्य समय के प्रवाह के साथ – साथ कम होता गया और दोनों एक दूसरे से अधिक प्रभावित होते रहे। अतः इस प्रक्रिया में न केवल लिखित साहित्य ही मौखिक साहित्य के विशेष लक्षणों, भावनाओं एवं विचार – शक्तियों से अनुप्राणित हुआ, वरन् लिखित साहित्य के प्रारम्भिक विकास – काल से ही मौखिक साहित्य भी इसका प्रभाव ग्रहण करता रहा है।

लोक साहित्य का महत्व

लोक साहित्य का महत्व, सामान्यतः ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, पौराणिक, भौगोलिक, नृत्य – शां ीय एवं भाषा – शां सम्बन्धी, अनेक दृष्टियों से आँका जा सकता है। इतिहास की पैनी दृष्टि जिन पुरातत्वों तक नहीं पहुँचती, वे प्रायः लोक साहित्य की तीक्ष्ण एवं सजग नज़र से उद्घाटित होते हैं। आधुनिक अनुसंधान ने लोक साहित्य के सशक्त उपकरण द्वारा मानव सभ्यता एवं संस्कृति के कितने ही ''मोहनजोदाडो'' एवं ''हड़ापा'' खोद निकाले हैं, और बहुरंगी संस्कृति की न जाने कितनी संपीड़ित परतें प्रकाश में लायीं हैं। वस्तुतः मानव सभ्यता

एवं संस्कृति के रिक्त अध्यायों को भरना लोक साहित्य का प्रमुख कर्म है। लोक साहित्य में समाज का वास्तविक एवं यथार्थ चित्रण अंकित रहता है। समाज के प्रत्येक स्पन्दन का अवलोकन, तदनुसार उसकी यथार्थ एवं अकृत्रिम अभिव्यंजना, जिस सजगता से लोक साहित्य में होती है, वैसी शिष्ट साहित्य में मिलना दुर्लभ है। शिष्ट साहित्य में समाज की प्रत्येक घटना अथवा गतिविधि के अवलोकन के साथ लेखक की निजी कल्पना, प्रतिभा, सौन्दर्य – बोध एवं व्यक्तित्व की छाप अंकित रहती है, इसके विपरीत लोक कवि अपने सहज बोध, प्रतिभा एवं साधारण ज्ञान के अनुरूप समाज के प्रत्येक पक्ष का यथार्थ एवं अकृत्रिम चित्रण करता है। वस्तुतः साहित्य यदि समाज का दर्पण कहलाता है, तो निर्मल, निरंलकार एवं विशुद्ध प्रतिबिम्ब के लिए लोक साहित्य का ही अवलोकन आवश्यक है।

लोक – धर्म एव संस्कृति, लोक साहित्य के प्राण हैं। आदिम – मानव, आधुनिक यांत्रिकता एवं सभ्य वातावरण का अभ्यस्त न था। वह जीवन की भौतिकता से अनभिज्ञ, असभ्य एवं बर्बर प्राणी था। उसके लिए रीतिपालन, वेद – आवाहन एवं अन्धविश्वास ही श्रेष्ठ कर्म थे। यही उसकी संस्कृति थी और यही उसकी सभ्यता थी। अतः इसी की सहज अभिव्यक्ति लोक साहित्य में हुई है। इसी कारण युगों की आस्थाएँ, धार्मिक रीतियाँ तथा आदिम – मानव के आचार – विचार, जिनके विषय में इतिहास मौन है, जिन का अब प्रचलन तक नहीं, लोक साहित्य के माध्यम द्वारा उद्घाटित होते हैं।

भाषा – विज्ञान की दृष्टि से भी लोक साहित्य का विशेष महत्व है। लोक साहित्य में भाषा – शां   का वृहत कोश निहित रहता है। शब्द – चयन, वाक्य – विन्यास, आँचलिक बोलियों के विविध रूपों एवं व्याकरण की दृष्टि से भी लोक साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है। लोक – भाषा के पद्यात्मक एवं गद्यात्मक प्रयोगों

का अवलोकन, जिनका तुलनात्मक भाषा – विज्ञान में विशेष महत्व है, लोक साहित्य द्वारा हो सकता है। भाषा के ऐसे ही पद्यात्मक प्रयोगों के कारण लोक गीतों को शब्दों के ''टकसाल'' कहा गया है। भाषा के इसी महत्व के कारण ही प्रायः विद्वान, एक लोक साहित्य – मर्मज्ञ का भाषा – शां ी होना भी अनिवार्य मानते हैं।

लोक साहित्य, जैसा कि कहा गया, मौखिकता में जीवित रहता है, इसलिए इसकी उपलब्धि प्रायः स्थानीय बोलियों में ही होती है। इसके विपरीत शिष्ट साहित्य का स्वरूप किसी साहित्यिक एवं राष्ट्रीय भाषा में ही अधिक निखरता है, अतः बोल – चाल की भाषाओं से भिन्न, इस में एक उदात्त एवं परिनिष्ठित भाषा रूप का प्रयोग होता है। परन्तु, जो सहजता और असीम शब्द भण्डार स्थानीय, बोल – चाल की भाषाओं में मिलता है, वह राष्ट्रीय अथवा साहित्यिक भाषा में मिलना दुर्लभ है। श्री ग्रियर्सन के शब्दों में, ''लोकगीत अनखुदी खाने हैं, इनकी संभवतः कोई भी पंक्ति ऐसी नहीं जो, यदि प्रकाशित हो जाये, भाषा – विज्ञान की किसी न किसी समस्या के हल के लिए मूल्यवान सामग्री न प्रस्तुत करें।''

इसी प्रकार नृत्य – वैज्ञानिक दृष्टि से भी लोक साहित्य का महत्व सर्वोपरि है। किसी जाति के इतिहास, रीति – रिवाज, अन्धविश्वास, विविध विचार – ं ोतों एवं मनोवेगों का सांगोपांग परिचय लोक साहित्य द्वारा प्राप्त होता है। लोक – जीवन का प्रत्येक पक्ष, प्रत्येक स्पन्दन, प्रत्येक गतिविधि तथा मानव – जीवन के शताब्दियों के मनोवेगों, विचारों एवं सहज – ज्ञान का भण्डार लोक साहित्य में संचित रहता है। यद्यपि पुरातत्व अथवा नृत्य – विज्ञान की भांति मानव का विचारात्मक तथा आध्यात्मिक इतिहास निर्माण करना लोक साहित्य का कर्म नहीं, तथापि सभ्य तथा असभ्य जातियों में प्रचलित रीति – रिवाजों, धार्मिक – विश्वासों अथवा उनके अवशेष – रूपों को उद्घाटित करना, उनकी सांस्कृतिक व्याख्या करना और इस

सत्य की पुष्टि करना कि कोई भी विश्वास अथवा रीति – रिवाज निराधार नहीं, लोक साहित्य का परम धर्म है। वस्तुतः, किसी देश का वास्तविक इतिहास तथा नैतिक एवं सामाजिक उच्चादर्श, लोक साहित्य में इस तरह अनुस्यूत रहते हैं कि इस महान साहित्य की क्षति निःसंदेह एक राष्ट्रीय हानि होगी।

''लोक साहित्य अतीत की गूँज भी है और वर्तमान की सशक्त आवाज़ भी।'' अतः अतीत का जितना सूक्ष्म से सूक्ष्म परिचय हमें प्राप्त होगा, उतना ही शीघ्र एवं सुविधानुकूल हमें वर्तमान को पूर्णतया समझने का सुअवसर प्राप्त होगा। वस्तुतः लोक साहित्य का महत्व शाश्वत है। काल अथवा समय के बन्धनों से मुक्त यह प्रत्येक युग की चेतना को अनुप्राणित करता रहा है और आज भी निरन्तर करता है। लोक – मानस की इस थाती को सुरक्षा, सही मूल्यांकन एवं सूक्ष्म अध्ययन से, निश्चय ही राष्ट्र का सांस्कृतिक पुनरुत्थान होगा।

भारतीय लोक साहित्य :

भारत की प्रौढ़ सांस्कृतिक परम्परा एवं ऐतिहासिक गौरव के अनुरूप ही यहाँ का लोक साहित्य अत्यन्त प्राचीन तथा विशिष्ट सांस्कृतिकता से युक्त है। संसार की किसी भी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता से तुलना करने पर, इसमें उन्हीं उत्कृष्ट एवं सम्पन्न लोक – तत्वों की उपलब्धि होती है, जो प्रायः उस संस्कृति अथवा सभ्यता के लोक साहित्य की विशिष्टता के द्योतक हैं। कई दृष्टियों से तो यह विश्व की अन्य जातियों से भी उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ है। भारत एक विशाल देश है। यह कई प्रकार की बहुरंगी जातियों एवं संस्कृतियों का संगमस्थल है। यहाँ कई प्रकार की भाषाएँ बोली जाती है। अतः इस देश के लोक साहित्य में वैविध्य एवं वैभिन्न्य परिलक्षित होना स्वाभाविक ही है। परन्तु इस विविधता में भी जो सांस्कृतिक एकता यहाँ के लोक

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
M. S. University of Baroda

साहित्य में व्याप्त है, उसके दर्शन अन्यत्र दुर्लभ हैं। वस्तुतः कश्मीरी, पंजाबी, हरियाणवी, गुजराती, ब्रज, भोजपुरी, अवधी, बुन्देली, बंगला, मलयालम, तमिल अथवा खड़ीबोली आदि भाषाओं के लोक साहित्य के अध्ययनोपरान्त, यद्यपि इनमें भाषागत अथवा संगीतात्मक वैभिन्न्य स्पष्ट परिलक्षित होता है, परन्तु मूलतः इनकी सांस्कृतिक एकीकरण की भावना, विभिन्न परम्पराओं एवं विचार – ˙ ोतों के होते हुए भी, भारतीय संस्कृति का प्राण है, इसका मर्म है। श्रीमतीय दुर्गा भागवत के शब्दों में, ''भारत की संस्कृतिक एकता, प्रादेशिक परम्पराओं के वैभिन्न्य के होते हुए भी अद्वितीय है। अतः लोक साहित्य की विभिन्न परम्पराएँ भी इसी सांस्कृतिक एकता अथवा वैभिन्न्य में भी ऐक्य की भावना की ओर संकेत करती हैं। लोकोक्ति हो अथवा पौराणिक उपाख्यान, पहेली हो अथवा लोकगीत, अध्ययन करने पर इन के समरूप, वेदों, पुराणों, बौद्ध अथवा जैन साहित्य तथा महाकाव्यों में अवश्य मिलते हैं।'' वस्तुतः, भारतीय लोक साहित्य में भारत के विशिष्ट, स्वस्थ एवं शाश्वत सांस्कृतिक ˙ ोतों का ही रक्त प्रवाहमान है।)[१२]

लोककथा उद्‌गम एवं विकास :

देखा जाय तो लोक कथाओं का उद्‌भव कब हुआ यह कहना कठिन है।

[१३](डॉ. सत्येन्द्र ने लोककथा के सम्बन्ध में लिखा है – लोकवार्ता – साहित्य की धर्म गाथाओं का उदय जिन उपादानों और व्यापारों से हुआ उन्हीं से साधारण लोकवार्ता साहित्य की लोकगाथाओं और लोककथाओं का भी हुआ।)[१३]

लोक साहित्य में लोक कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन समय से ही लोक कथाएँ जनमानस के भीतर समायी हुई है तथा समय – समय पर लोक कथाओं का भिन्न – भिन्न रुप देखने को मिलता है। जैसे कि यदि बच्चे को वीरता का पाठ

पढ़ाना हो तो शिक्षक, समाज या माताएँ उसी प्रकार की कथाएँ सुनाती थी। हमारी दादी, नानी की जो कथाएँ होती हैं। वह हमें किसी पुस्तक में नहीं मिलेंगी। हमें समय – समय पर वह भिन्न – भिन्न कहानियाँ या कथाएँ सुनाती थीं। जो कुछ पुस्तकों में समा गयी। जो नहीं समा सकी वह आज भी कथनी के रुप में सुनी जाती है। तो अलग – अलग जगह पर बहुत सारी अलग लोक कथाएँ पूरे भारत देश क्या पूरे विश्व में सुनने को मिलती है।

व्यक्ति अपने अनुभवों विचारों से कथाएँ बनाता आया है। इसके दो रुप है। (१) पौराणिक कथाएँ (२) लोककथाएँ।

लोकगीत की परिभाषा :

अब प्रश्न यह उठता है कि लोकगीत है क्या? लोकगीत उस नदी की धारा के समान है जो ग्रामीण संस्कृति के गर्भ से निकलकर न केवल ग्रामीण समाज को आप्लावित करती रहती है वरन् वह अपने शीतल वाणी रुपी जल से समग्र मानव समाज को शीतलता प्रदान करती है, और राह पर आनेवाले कंकड़, पत्थर और गंदगी को जिस प्रकार से नदी की धारा बहा ले जाती है उसी प्रकार से ग्रामीण जन भी इन गीतों के द्वारा अपने जीवन की विषमताओं और दुःखों को भुला देते हैं, और इन लोकगीतों की धारा आज भी निरन्तर जाने कब से एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में होती हुई निर्विघ्न, निर्विकार रुप से अपने सहज रुप में बह रही है। वास्तव में ये लोकगीत ग्रामीण संस्कृति के चलचित्र है, जिन्हें सुनकर ग्रामीण रीति – रिवाज, उनकी दिनचर्या, उनकी आर्थिक विषमता, उनका उल्लास, सभी कुछ श्रोता के सामने एक के बाद एक करके आने लगता है। यह बात और है कि अब यह गीत शहरी सभ्यता से भी प्रभावित होने लगे हैं परन्तु इनमें ग्रामीणता ज्यों की त्यों विद्यमान है। ये ग्राम गीत

हमारे ग्रामीण भाईयों की अक्षयनिधि है जिसे उन्होंने बिना किसी डिग्री प्राप्ति की अकांक्षा के जाने कब से अपने कण्ठों में सुरक्षित रखा है, और आज भी वह उसे सुरक्षित रखे हुए हैं। यहाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि बदलती हुई परिस्थितियों ने उन पर प्रभाव अवश्य डाला है। मि. राल्फ विलियम्ज ने ठीक ही कहा है ''लोकगीत न पुराना होता है न नया, वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान होता है, जिसकी जड़ें तो धरती में दूर तक (भूतकाल) में धंसी हुई होती है किन्तु जिसमें नित्य नयी – नयी डालियाँ, पल्लव और फूल लगते रहते हैं।''

ग्रिम के अनुसार – ''लोकगीत अपने आप बनते हैं।''

प्रायः यह कहा जाता है कि लोकगीत किसी एक कवि की रचना न होकर सामूहिक रुप से रचे गये होते हैं। जिनको कभी किसी ने एक साथ बैठकर नहीं लिखा: इनकी रचना तो स्वतः होती है। यह बात पूर्णरुपेण सही प्रतीत नहीं होती, क्योंकि यह बात और है कि लोकगीत न जाने कब से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के कण्ठ में हस्तान्तरित होते जा रहे हैं और उनके रचयिता का किसी को भी पता नहीं है। फिर भी प्रश्न उठता है कि कभी तो किसी न किसी व्यक्ति ने इन गीतों की रचना की होगी क्योंकि गीत तो किसी न किसी एक मस्तिष्क की ही रचना हो सकती है। किसी समूह का मस्तिष्क एक हो नहीं सकता जो गीत की रचना करे। यह बात और है कि समूह द्वारा परिवर्तन और परिवर्तन होते रहे हों। और गीतों के क्षेत्र विस्तार के साथ उसके रचयिता का नाम विलीन हो गया हो।

लोकसाहित्य एक विशाल वृक्ष की तरह है। जो बहुत सालों से लोक मानस में रची बसी है। यह एक मूल है यदि यह मूल एक वृक्ष से निकाल दिया जाय तो वृक्ष

सुख जाता है। उसी प्रकार से लोकसाहित्य को लोकजीवन से निकाल देने पर उनका जीवन नीरस बन जाता है।

इसके बहुत से रुप है। (१) लोकगाथा (२) लोकगीत (३) लोककथाएँ (४) लोकनाट्य (५) प्रकीर्ण साहित्य (६) तन्त्र – मन्त्र साहित्य।

लोककथाएँ इसका एक अभिन्न अंग है। लोककथाएँ उसी प्रकार मानव के जीवन से जुड़ी है जिस प्रकार से हमें खाना खाने के साथ पानी की आवश्यकता होती है। यह पूरे समाज में फैली हुई है।

यह आरंभ कहाँ से हुई यह कहना मुश्किल है। परन्तु ऐसा मानते है कि गाँवों में जब फुर्सत में लोग इकट्ठा होते थे तो वह समय व्यतीत करने तथा मनोरंजन के लिए सुनाया करते थे। यह कथाएँ जीवन से संबंधित, सच्ची तथा प्रेरणा प्रदान करनेवाली होती थी।

यह एक गाँव या एक देश की बात नहीं है। यह पूरे विश्व में समान रुप से फैली हुई है। ऐसा नहीं कि सिर्फ भारत में ही यह मिलती हों। यह पूरे विश्व में पाई जाती है।

कुछ लोककथाओं को पन्नों पर उतार दिया गया तथा सुरक्षित कर दिया गया। परन्तु अभी भी कई ऐसी लोककथाएँ है जो मिट चुकी है। कुछ आखरी साँसें ले रही हैं। इसलिए हमें उन्हें संजोकर रखना है। आज भी बच्चे अपने दादा – दादी, नाना – नानी से कथाएँ सुनने में जितना आनंद महसूस करते हैं उतना विडीयो गेम तथा कार्टुन देखने से महसूस नहीं करते है।

बस फर्क इतना ही है कि हमारा परिवार एक साथ नहीं रहता है। वह पुरानी परम्परा टूट गयी है। तो बच्चे दूसरे तरीके से अपना समय बिताते हैं परन्तु जो दादा

– दादी के साथ रहते है उनके दादा – दादी उनको जो कथाएँ सुनाते हैं वह सुनने में उनको बहुत खुशी महसूस होती है।

लोककथाओं में सामाजिकता, धार्मिकता तथा संस्कृति समायी होती है। जिससे हमें ज्ञान तथा शिक्षा मिलती है।

लोककथा तथा लोकगाथा में अन्तर :

लोककथा :

लोककथा में निम्न बातों का होना आवश्यक है।

- वह लोक जीवन में प्रचलित हो, फैली हो।
- एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहे।
- जीवन के सुख दुःख रीति रिवाज, परम्परा सौन्दर्य सब कुछ समाहित हों।

लोककथाएँ प्राचीन समय से ही चली आ रही हैं। जैसे – ऋग्वेद में बहुत से सुक्त है। तथा ऋषि शुनः शेव का विख्यात आख्यान।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक कथाएँ मिलती है। शतपत ब्राह्मण में पुरूखा और उर्वशी की कथा बहुत प्रख्यात है।

इसी में दध्यङ आथर्वण की कथा (ऋषि दधीधि), उपनिषदों में भी अनेक गाथाएँ हैं। अग्नि और यक्ष की कथा केनोपनिषद् में हैं आदि प्राचीन समय से कथाएँ चली आ रही है।

सब से पुराना संग्रह 'वृहत्कथा' है। जिसको लेखक गुणाढ्य ने लिखा था। जो पैशाची भाषा में था। पर अब नहीं मिलता है। हाँ, व्युलर कहते है इसकी रचना ईसा की दूसरी शताब्दी में हुयी थी।

इसके तीन अनुवाद संस्कृत में मिलते हैं। (१) वृहत्कथा श्लोक संग्रह (२) वृहत्कथा मंजरी (३) कथा सरित्सागर।

इसके अलावा पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविशतिका (हिन्दी में बैताल पचीसी) नाम का ग्रंथ है, सिंहासन द्वात्रिंशिका (सिंहासन बत्तीसी), शुक्सप्तति, जातक मिलती है।

जिस तरह कि हमने चर्चा कि है कि लोककथा लोकसाहित्य का रुप है।

[१४](डॉ. सत्येन्द्र के मतानुसार – लोक कहानी के तत्व (१) लोक मानस (२) कथारुप (३) पात्र (४) अभिप्राय, कथानक रुढ़ि या कथातन्तु (५) सामान्य घटना (६) संघटना (७) अक्षरकथा या कथामानक (८) उपयोग दृष्टि (९) अलंकरण (१०) वातावरण।)[१४]

[१५](लोककथाओं में अभिप्रायों का विशेष महत्व है। ये ही इनकी रोचकता बढ़ाते है, इनसे ही लोककथाओं में अलौकिकता आती है एवं उनके सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। वस्तुतः लोककथा का अस्तित्व इन अभिप्रायो से ही सिद्ध होता है। और इनके माध्यम से ही विश्व की समस्त कथाओं का सुव्यवस्थित अध्ययन किया जा सकता है।

इन अभिप्रायों का क्षेत्र विस्तृत है तथा इनकी संख्या भी असीमित है। श्रोता भी इनसे इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि समय – समय पर इनका स्मरण दिलाकर कथक से विशिष्ट कहानी कहने के लिए अनुरोध करते है। कथा के निर्माण में ये

अभिप्राय ही मूल कारण माने गये हैं। इनका बाहुल्य कथा की सबलता एवं आकर्षण को असाधारण रुप में बढ़ाता है। कहानी का केन्द्र बिन्दु अभिप्रायों में ही रहता है। इन अभिप्रायों से कहानी निर्मित होती है और वह इनके ही चारों और घुमती रहती है।)[१५]

लोक कथाओं के तत्व :

[१६]((१) कथानक (२) पात्र (३) चरित्र – चित्रण (४) कथोपकथन (५) उद्देश्य (६) भाषा एवं शैली।)[१६]

लोकगाथा :

[१७](लोक की भाषा अथवा बोली में पारम्परिक, स्थानीय अथवा पूरा आख्यानमूलक गेप अभिव्यक्ति लोकगाथा। इन गेप कथा – प्रबंधों के लिए अंग्रेजी के फोक एपिक (Folk Epic) या बैलेर्ड (Ballad) शब्द के पर्याय के रुप में हिन्दी में लोकगाथा शब्द का प्रयोग होता है।

लोकगाथा का रचनाकर अज्ञात होता है। इसमें प्रामाणिक मूलपाठ की कमी होती है, संगीत और नृत्य का समावेश होता है, स्थानीयता की गंध होती है, अलंकृत शैली का अभाव होता है, कथानक दीर्घ होता है, टेक पदों की आवृत्ति की बहुलता रहती है, रचनाकार के व्यक्तित्व तथा उपदेशात्मकता का अभाव रहता है तथा यह मौखिक रुप में कंठानुकंठ परम्परीत होती है।

लोकगाथाओं में लोकमानस की भावनाएँ, मान्यताएँ, लोक विश्वास आदि लोकसंस्कृति एवं इतिहास के जीवंत तत्व, सन्निहित रहते हैं। ये वास्तव में किसी भी संस्कृति का तिथि – क्रम रहित सांस्कृतिक इतिहास होती है।

लोकगाथाओं में प्रायः गद्य और पद्य का सम्मिश्रण मिलता है। अतः काव्य रुप की दृष्टि से इन्हें चम्पू – काव्य की कोटि में रखा जा सकता हैं। इन गाथाओं में श्रृंगार, वीर या करुण रस अंगी रुप में आता है।)[१७]

[१८](चम्पू शैली की उपयोगिता बताते हुए – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं।

''लोककथाएँ प्रधानतया गद्य में ही पाई जाती है परन्तु बीच – बीच में इनमें पद्यों का भी प्रयोग किया गया है। चम्पू काव्य की परिभाषा संस्कृत आचार्य ने इसे गद्य – पद्य – मय काव्य कहा है। इस प्रकार इन कथाओं में शैली को ग्रहण किया गया है। ज्ञात होता है कि श्रोताओं पर स्थायी प्रभाव जमाने के लिए गद्य के बीच – बीच में पद्य की अवतारणा की गई है । कुछ कहानियों में तो पद्यों की संख्या बहुत अधिक है। प्रायः यह देखा गया है कि जहाँ कथानक के बीच में कोई पद्य नहीं है वहाँ अंत में ही कोई पद्य देकर कहानी समाप्ति की गई है। जैसे ढेला और पत्ती की कथा के अन्त में है।'')[१८]

[१९](''लोक गाथा के सम्बन्ध के डा. कृष्णदेव लिखते है – ''लोक साहित्य के अन्तर्गत ऐसे भी गीत पाये जाते हैं जो बहुत लम्बे होते हैं तथा जिनमें कथावस्तु की ही प्रधानता होती है। इन गीतों को लोक – गाथा के नाम से अभिहित किया गया है। उत्तरी भारत में 'आल्हा की लोक – गाथा' बड़ी प्रसिद्ध है; जिसमें वीर रस का संचार पाया जाता है। पंजाब के राजा रसालू और राजस्थान में बापू जी की गाथा अत्यन्त लोकप्रिय है। मध्यप्रदेश में जगद्देव की गाथा बड़े प्रेम से गाई जाती है। ये गाथाएँ इतनी लम्बी होती है कि गवैए कई रात तक उन्हें गाते रहते हैं। यदि इसकी साधारण जनता का महाकाव्य कहा जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। इन गाथाओं को लिपि – बद्ध करना बड़ा कठिन है। इंग्लैण्ड में अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। जिनमें रॉबिनहुड से

संबंधित गाथाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। संसार के सभ्य कहे जाने वाले सभी देशों ने अपने राष्ट्रीय वीरों की कथाओं को सुरक्षित रखा है।)[१९]

इस प्रकार की पद्यात्मक कथाएँ छोटी तथा बड़ी दोनों प्रकार की होती हैं। बड़ी कथाओं में मूल कथा के साथ छोटी उपकथाएँ भी जुड़ी रहती हैं। ऐसी लम्बी कथाओं में कथानक के साथ पात्रों का चरित्र – चित्रण भी रहता है। साथ ही साथ देशकाल के वातावरण की भी समुचित रुप में चित्रिच किया जाता है। ऐसी कथाओं में पात्रों का कथोपकथन पात्रानुसार प्रस्तुत किया जाता है। यह इतना स्वाभाविक होता है कि श्रोता एवं पाठक इनसे सहज ही में प्रभावित हो जाता है। छोटी पद्यात्मक कथाओं में ये सरल अपेक्षाकृत सीमित रुप में अभिव्यंजित होते हैं।

जिस प्रकार गद्यात्मक कथाओं में संस्कृति की अभिव्यंजना होती है, उसी प्रकार पद्यात्मक कथाएँ भी लोकाचारों, लोक विश्वासों, मान्यताओं, धारणाओं आदि के प्रति पूर्ण आस्था प्रदर्शित करती हैं। इनके अध्ययन से सम्बन्धित प्रदेश की संपूर्ण संस्कृति का परिज्ञान हो जाता है। इसलिए प्रादेशिक, धार्मिक एवं सामाजिक वातावरण के अध्ययनार्थ ऐसी कथाएँ बड़ी सहायक मानी गई हैं।

इन कथाओं के यद्यपि किसी छंद विशेष को नहीं अपनाया जाता है। फिर भी संगीतात्मकता इनकी उल्लेखनीय है। लोक – वाद्यों के स्वरों के साथ जब ये गाई जाती हैं तब बड़ी सुहावनी लगती हैं।

लोक – कथाओं की भाँति इन गाथाओं के विविध वर्ण्य विषय रहते हैं जिनमें लोक – संस्कृति एवं सभ्यता कलात्मक ढंग से चित्रित रहती है। [२०](इन लोक – गाथाओं में सबसे बड़ी बात यह है कि ये हमारे सामने जातीय संस्कृति का अनुपम चित्र उपस्थित करती हैं। इनके द्वारा किसी युग – विशेष की समस्त परंपराएँ अपने

स्वाभाविक क्रिया – कलाप में स्पष्ट हो उठती है। ये परम्पराएँ, उत्सव, त्यौहार और मंगलमय आचारों की हृदयग्राही भावनाओं और इनकी स्मृतियों से जीवन की अनुभूति को और भी सरस बना देती हैं। प्रत्येक मंगलमय त्यौहार और उत्सव, संयोग या वियोग में प्रेम का आश्रय पाकर भावनाओं के अत्यन्त समीप आ जाता है और तब हम अनुभव करते हैं, कि हमारी परम्पराएँ जीवन की कितनी गहराई से उठी है और उनके निर्माण में कितनी जातियता या संगठन की भावना है।)[२०]

लोक – गाथा की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं जिनका उल्लेख ए.बी. गमियर ने अपनी पुस्तक 'ओल्ड इंग्लिश बैलेड्स' की भूमिका में किया है –

१. [२१](उसमें आत्म – व्यंजक तत्व (सब्जेक्टिव एलीमेंट) का पूर्ण अभाव होता है अर्थात् वह अनिवार्यतः वस्तु – व्यंजक (आब्जेक्टिव) होता है।

२. वह लोक का काव्य है। लोक – द्वारा ही उसका निर्माण और विकास होता है। कंठानुकंठ प्रसार और प्रचार होने के कारण उसका निश्चित पाठ नहीं होता और न उसकी लिखित प्रतियाँ ही होती है।

३. उसमें श्रम साध्य कलात्मकता नहीं होती किन्तु यथार्थ चित्रण की प्रवृति अधिक होती है। उसमें आवश्यक भरती की सामग्री और वाग्जाल नहीं होता।

४. उसमें परम्परा प्रेम की भावना, सहजोच्छवास, भावनात्मकता, और सरल कल्पना (डाइरेकट – विजन) की मात्रा जितनी अधिक होती है, उतनी बौद्धिकता, कल्पनाशीलता, और श्रम – साध्य कलात्मकता की नहीं।

५. उसमें भाषा और विचारों की सरलता होती है और नैसर्गिकता तो ऐसी होती है जो केवल प्रारंभिक मानव – समाज ही में मिलती है।

६. उसमें रुढ़, अस्वाभाविक और श्रम साध्य अलंकारों, मुहावरों और विशेषणों की आवृत्ति बार – बार होती है।

७. उसका छंद सीधा – सादा और सरल होता है और तुकों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

८. उसमें गेयता होती है परन्तु वह शां ीय संगीत से भिन्न सरल होती है।

९. उसमें कोई छोटी या बड़ी कथा अवश्य होती है।)[२१]

वीर, श्रृंगार, करुण आदि रसों से परिपूर्ण ये गाथाएँ अमानवीय तत्वों से भी सम्बन्धित रहती है। इनमें पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि तथा पादप – पुष्पादि मानव – वाणी में बोलते हैं एवं मानव के उज्जवल एवं श्यामल दोनों रुपों को प्रदर्शित किया जाता है। सामाजिक एवं धार्मिक समारोहों में सामूहिक रुप से ये गाथाएँ निर्मित होती है तथा गाई जाती है। जनता के लिए जनता द्वारा बनाया गया यह लोक काव्य लोकानुभूति का रम्य प्रतिक है।

[२२](''लोक गाथाओं का मूल उद्देश्य या नीति की शिक्षा तथा आचार की भावना नहीं होता, ये वास्तव में विषय – प्रधान काव्य होते हैं। प्रसंगवश यह पक्ष आ जाते हैं पर वह बहुत स्वाभाविक रुप में नहीं। प्रवृति प्रधानतया उस ओर नहीं होती। मनोरंजन के साथ ही इनमें कुछ उपदेश व ज्ञान भी निहित रहता है। इनमें भाग्य कर्म का संघर्ष दिखाया जाता है। इस पर प्रकाश अवश्य पड़ा है। उदाहरण के लिए गोपीचन्द, भरथरी, गुग्गा, आल्हा, पूरन भगत आदि में त्याग, तपस्या, प्रेम, मातृभक्ति, देश – भक्ति आदि के प्रसंग यत्र – तत्र बिखरे मिलते हैं। इन लोक गाथाओं टेक पदों की तथा लघु अंशो की आवृत्ति गायक अपनी सुविधा के लिए करते हैं। आवृत्ति के कारण

गीत अधिक प्रभावशाली भी हो जाता है। यह सार्थक निरर्थक दोनों ही प्रकार ही है।'')[२२]

[२३](लोक – गाथा लोक – साहित्य का विशिष्ट अंग है। लोक – गीत की अपेक्षा लोक – गाथा का बड़ा होता है। लोक – गीत में मानव – हृदय के संक्षिप्त भाव अवतरित होते हैं, जबकि लोक – गाथा में पूर्ण कथानक उभरकर आता है। कथानक लोक – गाथा का आवश्यक तत्व है और कथानक प्रायः महान आदर्श वाले ऐतिहासिक, धार्मिक या लोक – आदर्शवाले नायक से संबंध होता है। महान नायक के आर्दशों एवं सद्‌गुणों को लोक – मानस में स्थापित करना लोक – गाथा का उद्देश्य है।

मानव विभिन्न अवसरों पर लोक – गाथाएँ गा – गाकर सुनाते हैं। इस प्रकार गेय लोक – गाथा का दूसरा आवश्यक तत्व है। लम्बे कथानक के कारण गायक लोक – गाथा को चरणों में पूर्ण करता है। लोक – गाथा – साहित्य का कइ दृष्टियों से महत्व है। सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से लोक – गाथा में समाज का समग्र चित्र उपस्थित होता है। समाज का कोई पक्ष इससे अछूता नहीं हैं। सामाजिक परम्पराओं, रीति रिवाजों, सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं, रुढ़ियों, कार्य – कलापों एवं लोक – आदर्शों का इसमें यथार्थ चित्रण होता है।

लोक – गाथा में अनेक पात्रों के चरित्र–चित्रण का वर्णन होता है। इसमें नायक – नायिका को चरित्रवान, वीर एवं साहसी दिखाया जाता है। लोक – गाथाओं में सदैव सत्य और धर्म की विजय दिखायी जाती है। धर्म, दान, दया, प्रेम आदि का समाज में प्रसार करने में लोक – गाथा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कुछ लोक – गाथाएँ किसी अवसर विशेष पर न गायी जाकर फुरसत के क्षणों में गायी जाती हैं।

इनमें मुख्य रुप से आल्हा और ढोला आते हैं। आल्हा प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाता है।

लोक – गाथा की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है –

१. गेय होना लोक – गाथा का पहला आवश्यक तत्व है, क्योंकि लोक – गाथाएँ गायी ही जाती हैं।

२. लोक गाथाओं में कथानक दीर्घरुप में प्राप्त होता है, इनमें सम्बन्धित नायक जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का विस्तृत विवरण होता है।

३. इनका कलेवर लोक – भाषा से ही निर्मित होता है। सरल छन्द – विधान, प्रवाहमय लोक – भाषा, कतिपय प्रचलित अलंकारों एवं लोकोक्तियों आदि का प्रयोग इनकी विशेषताएँ हैं।

४. लोक – गाथाओं में इतिहास सम्मत अनेक पात्रों का वर्णन एवं चरित्र – चित्रण मिलता है, किन्तु इनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध होती है। इसका मुख्य कारण गाथाकार में शैक्षिक योग्यता तथा इतिहास सम्बन्धी ज्ञान का अभाव है।

५. इनका रचयिता प्रायः अज्ञात ही होता है। यद्यपि कुछ रचनाएँ व्यक्ति विशेष के नाम से प्रकाशित रुप में भी मिलती हैं, किन्तु मौलिकता की दृष्टि से इनका मूल रचयिता अज्ञात ही रहता है।

६. लोक – गाथाओं में रचयिता के व्यक्तित्व – वैशिष्ट्य का अभाव रहता है। इसकी परम्परा मौखिक होने के कारण यह मूल रचयिता की कृति न रहकर, जन – जन की कृति बन जाती है।

७. कुछ लोक – गाथाओं को गाते समय निश्चित लोक – वाद्यों का भी प्रयोग होता है।)[२३]

अगर कहा जाय तो लोक कथा पूर्णतयः गद्य में लिखी होती है या बोली (सुनाई) जाती है तथा उसमें मनोरंजन, शिक्षा, सच्चाई, प्रेरणा आदि भाव सम्मलित होते हैं।

हमारे बुर्जुग बच्चों को ज्यादातर लोककथाएँ ही सुनाते थे जिनसे बच्चों को शिक्षा, प्रेरणा आदि ज्ञान प्राप्त हों।

लोकगाथा अधिकतर बड़ों के बीच में बैठकर या कुमाऊँ क्षेत्र में जब जागर (शंकर, दुर्गा की पूजा) की जाती है तब उनको कथा तथा गाथा दोनों से संबोधित किया जाता है। इस प्रकार से वह बहुत दिनों तक चलता है।

वैसे तो लोककथाएँ भी बहुत दिन चलती है परन्तु लोकगाथा से कम विस्तार होता है।

मानव जीवन एवं लोककथाएँ :

मानव जीवन के साथ लोककथाओं का अत्यंत प्राचीन समय से संबंध रहा है। मानवजीवन में लोककथाएँ पूरी तरह रच बस गयी हैं इन दोनों को अलग करना नामुमकिन है।

एक दूसरे के बिना दोनों अधूरे हैं क्योंकि मानव के जीवन में उपदेश, प्रेम, प्रेरणा, ज्ञान, शिक्षा, भय, ईर्ष्या, कष्ट, सुख – दुःख आदि भाव होते हैं। इन भावों को आगे बढ़ाने के लिए या कहे तो इससे क्या – क्या मिलता है यह सब बताने के लिए

मानव को कथाओं का सहारा लेना पड़ता है। वह कथा बनाता नहीं है वह जीवन की घटनाओं से बनती जाती है।

जैसे कि जयशंकर प्रसाद की कामायनी, दिनकर – उर्वशी पुराण, रश्मिरथी तथा विभिन्न क्षेत्र के विभिन्न कथाएँ। [२४](जैसे कुमाऊँ क्षेत्र के काकल पाको, मन इच्छा मुनड़ि खकरमुन, जस के तस, द्वी भाई, ग्वेल, सात परि, कलविष्ट, आदि)[२४]

[२५](मावची भाषा की तीन अनाथ बच्चों की कहानी, राजा रानी कथा आदि।)[२५]

[२६](पीलीभीत की लोककथा – हरछट की कथा (दियोरानी – जिठानी की कथा), करवाचौथ की कथा (पाण्डे पण्डिआइन की कथा), गल्लमखाँ, सोने की चिरैया आदि)[२६]

इस प्रकार से विभिन्न भाषाओं की अपनी – अपनी लोककथाएँ हैं जो मानव जीवन से पूर्ण तरह जुड़ी हैं तथा समय – समय पर इनको दोहराकर आनेवाली पीढ़ियों को सौंपा जाता है।

भारतीय लोक कथाएँ :

परिभाषा :

लोक कथाओं की परंम्परा बहुत पुरानी है हमारी सृष्टि जितनी पुरानी है। मनुष्य कुछ विचार – विचरण करता है उसके साथ ही लोक कथाओं का जन्म भी हुआ। अर्थात् कह सकते है कि विचार करना जब से शुरु हुआ तब से लोक – कथाओं का जन्म हुआ।

[२७](वाड्मय के दिव्य ' ोत की प्रथम अभिव्यक्ति पुराण शां के रुप में हुई। ब्रह्मा के चतुर्मुखी व्यक्तित्व से पहले पुराण प्रकट हुए, पीछे वेद। तात्पर्य यह कि पुराण

तत्व की पृष्ठभूमि पर वेद तत्व की अभिव्यक्ति होती है। पुराण की परिभाषा है – पुरानवंभवति, जो प्राचीन होकर भी नित नया बना रहे। यही कहान्ी तत्व है।)[२७]

लोककथा तरह – तरह की पायी जाती है। जैसे परी, पशु, पक्षियों, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, पद्यात्मक आदि। इसी प्रकार से भारत की लोक कथाओं में कई तरह के पात्र होते है। [२८](जैसे – नाग राजकुमार कथा में राजा होते हैं, नाग, आदि हैं।)[२८]

'खुण्ड चना दे काम कैसे हो' नामक कथा में मुख्य पात्र राम (लड़का है) इस कथा में बढ़ई, रानी, साँप, लाठी, आग, जोहड, राजा आदि हैं। ऊँट, चूहा, बोरी, बिल्ली है बिल्ली उस बालक की सहायता करती हैं।

इसी प्रकार से अन्य भाषाओं में जैसे महाराष्ट्र, अवध, गुजराती, मालवा, निमाह, बुज आदि में भी ऐसी कथाएँ है।

लोक कथाओं का वर्गीकरण :

लोक कथाओं का वर्गीकरण विभिन्न रुप में विद्वानों ने किया हैं। जैसे कि दीर्घ निकाय के ब्रह्मजाल सुत में एक स्थान पर कथाओं के निम्न भेद किये हैं। राज कथा, महामात्र कथा, सेना कथा, भय कथा, युद्ध कथा, अन्न कथा, ज्ञाति कथा, यान कथा, निगम कथा, नगर कथा, जनपद कथा, वं कथा, चोर कथा, माला कथा, गंध कथा, ी कथा, विशिखा कथा, कुम्भ स्यान कथा, पूर्व प्रेत कथा, निरर्थक कथा, लोक ख्याथिका कथा, समुद्राख्याथिका कथा, पान कथा, श्यन कथा, ग्राम कथा।

[२९]('डॉ. सत्येन्द्र ने लोक कथाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है। (१) उपदेशात्मक (२) मनोरंजनात्मक (३) व्रतात्मक (४) प्रेमात्मक (५) वर्णात्मक (६) सामाजिक।')[२९]

[३०]('डॉ. कृष्णलाल हंस ने निमाड़ी लोक कथाओं को आठ भागों में बाँटा है। (१) धर्म कथाएँ (२) पशुपक्षी सम्बन्धी कथाएँ (३) परियों और अप्सराओं से सम्बन्धित कहानियाँ (४) जादू की कहानियाँ (५) वीरता विषयक कहानियाँ (६) साधु – फकीरों की कहानियाँ (७) ऐतिहासिक कहानियाँ (८) विविध कहानियाँ।')[३०]

[३१]('डॉ. सत्या गुप्त के मतानुसार – (१) धार्मिक कथाएँ (२) ऐतिहासिक कथाएँ (३) अलौकिक कथाएँ (४) सामाजिक कथाएँ (५) नीति कथाएँ (६) हास्य कथाएँ (७) पशु – पक्षी कथाएँ।')[३१]

इन सब महानुभावों की लोक कथाओं को पढ़ने के बाद लोक कथाओं का वर्गीकरण समय – समय पर बदलता रहा है। क्योंकि समय के साथ शीर्षक में भी बदलाव आता है जैसे कि अभी विज्ञान का युग है तो जिन वैज्ञानिकों के बारे में हमें सबूत नही मिलें है उनके बारे में खोज के पीछे हमने कहानी कथा बना दी। उदाहरण – ऐलियनस हैं या नहीं। यह पूरी तरह से सिद्ध नहीं हुआ है परन्तु वह हमारी दुनियाँ में आकर गायों को अपने यान से रोशनी डालकर उठाकर ले जा रहे है ऐसी कथाएँ बनना शूरु हो गयी है। तथा कई तो विडियों भी बनाकर दिखाये जा रहे है।

यही आगे चलकर कथाओं में परिवर्तित हो जायेंगे तथा नया शीर्षक बन जाएगा। अभी जो कथाओं का वर्गीकरण कहा जाएगा वह इस प्रकार से है।

सामाजिक कथाएँ, धार्मिक कथाएँ, परियों की कथाएँ, पशु – पक्षीयों की कथाएँ, ऐतिहासिक कथाएँ, नैतिक कथाएँ, उपदेशात्मक कथाएँ, नीति परख कथाएँ, सदाचार की कथाएँ, हास्य कथाएँ, अलौकिक कथाएँ, स्थल के नाम संबंधी कथाएँ, जादुई कथाएँ, वीरता की कथाएँ, साधु – फकीरों की कथाएँ, आदि।

संदर्भ सूची

१. लोक साहित्य – डॉ. बापू राव देसाई – पृ.सं. १०९, ११०

२. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन – पृ.सं. १८४

३. लोक साहित्य – डॉ. इन्दू यादव – पृ.सं. ७

४. वही .... पृ.सं. ८

५. वही .... पृ.सं. ८

६. लोक साहित्य का अध्ययन – त्रिलोचन पाण्डे – पृ.सं. ५२

७. वही .... पृ.सं. ५३

८. अवधि का लोक साहित्य – डॉ. सरोजीनी रोहतगी – पृ.सं. ३८

९. लोकगीतों में समाज – पूर्णिमा श्रीवास्तव – पृ.सं. ९

१०. हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सास्कृतिक चेतना – डॉ. त्रिवेदी – पृ.सं. १९

११. दिल्ली अंचल की लोक संस्कृति – डॉ. जय नारायण कौशिक – पृ.सं. १३ से १८

१२. कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत – एक तुलनात्मक अध्ययन – जवाहरलाल हङ्ङ – पृ.सं. ८ से १६

१३. व्रज लोक साहित्य का अध्ययन – डॉ. सत्येन्द्र – पृ.सं. १३

१४. लोक साहित्य विज्ञान – डॉ. सत्येन्द्र – पृ.सं. २१३

१५. लोक कथा विज्ञान – श्री चन्द्र जैन – पृ.सं. ६४

१६. वही .... पृ.सं. ८३ से ८७

१७. लोक संस्कृति के विविध आयाम – डॉ. देवसिंह पोखरिया – पृ सं. ५७, ५८

१८ लोक कथा विज्ञान – श्री चन्द्र जैन – पृ.सं. ८८

१९. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास – षोंश भाग – हिन्दी का लोक साहित्य की प्रस्तावना – महा पं. राहुल सांकृत्यायन, डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय – पृ.सं. ५७

२०. साहित्य शास्त्र – डॉ. राम कुमार वर्मा – पृ.सं. १०२

२१. हिन्दी साहित्य कोष – पृ.सं. ६८८

२२ खड़ी बोली का लोक साहित्य – डॉ सत्या गुप्त – पृ.सं. २४७

२३. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन – डॉ महेश गुप्त – पृ सं ६४, ६५

२४. कुमाऊँनी लोक कथ – डॉ. प्रभा पंथ – (शीर्षक)

२५. लोक साहित्य शास्त्र – डॉ. बापू राव देसाई – पृ.सं. ७५ से ७७

२६. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन – डॉ. महेश गुप्त – पृ.सं. ४०५, ४०६

२७. लोक कथा विज्ञान – श्री चन्द्र जैन – पृ.सं. १४१

२८. कुमाऊँनी लोक कथ – डॉ. प्रभा पंथ – पृ.सं. ३२

२९. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन – डॉ. सत्येन्द्र – पृ.सं. ८२

३०. निमाडी और उसका साहित्य – पं. रामनारायण उपाध्याय – पृ.सं. ३४१

३१. खड़ी बोली का साहित्य – डॉ. सत्या गुप्ता – पृ.सं. १७७